साहित्य के दर्पण मे मनु शर्मा

डॉ. सचिन जाधव

साहित्य के दर्पण
मे मनु शर्मा

डॉ. सचिन जाधव

प्ररूप पब्लिकेशन, कोल्हापुर

साहित्य के दर्पण मे मनु शर्मा

प्रथम संस्करण

दिसंबर २०२५

प्रकाशक –

प्ररूप पब्लिकेशन, कोल्हापुर

© कॉपीराइट सुरक्षित

संपादन, प्रकाशन, वितरण एवं प्रचार संबंधी सभी अधिकार प्रारूप पब्लिशिंग, कोल्हापुर के पास सुरक्षित हैं। इस प्रकाशन का कोई भी भाग प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा किसी भी माध्यम से—इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग अथवा अन्य किसी माध्यम से—पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता। इस पुस्तक में प्रकाशित विचार एवं प्रस्तुत परिणाम संबंधित लेखक के हैं। इनके लिए प्रकाशक उत्तरदायी नहीं हैं।

ISBN – 978-81-988504-2-3

टाइप सेटिंग – माऊली कम्प्यूटर्स, कोल्हापुर

समर्पण

जिन्होंने मुझे पढ़ाया, लिखाया और काबिल बनाया, उन श्रद्धेय माता-पिता तथा प्रियवर छोटे भाई को कृतज्ञतापूर्वक सादर समर्पित …

लेखक की भूमिका

'साहित्य के दर्पण में मनु शर्मा' नामक इस पुस्तक की रचना का उद्देश्य हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित उपन्यासकार मनु शर्मा के साहित्यिक अवदान का समग्र परिचय प्रस्तुत करना है। मनु शर्मा ने ऐतिहासिक तथ्यों व गहन शोध के आधार पर 'वीर शिवाजी' तथा 'एकलिंग का दीवान' जैसे उपन्यासों में आदर्श राजाओं के जीवन चरित्र को सजीव किया, वहीं प्रागैतिहासिक कथा-भूमि पर आधारित 'अभिशप्त कथा', 'कर्ण की आत्मकथा', 'द्रोण की आत्मकथा', 'द्रौपदी की आत्मकथा' और 'गांधारी की आत्मकथा' जैसी कृतियों में महाभारत के पात्रों को आधुनिक मनुष्य के मिथक के रूप में पुनर्जीवित किया।

इस पुस्तक में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार लेखक ने आधुनिक मनुष्य की मानवीय वृत्तियों को औपन्यासिक पात्रों के माध्यम से उजागर कर आधुनिक मनुष्य की शाश्वत समस्याओं का शाश्वत समाधान प्रस्तुत किया है। साथ ही 'घरौंदा', 'समय साक्षी है' और 'विभाजित सवेरा' जैसे सामाजिक उपन्यासों में निहित भारतीय आधुनिक इतिहास की झलक का भी विश्लेषण किया गया है। आशा है यह पुस्तक पाठकों व शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

अनुक्रमणिका

अ. क्र.	उपन्यास	पृष्ठ संख्या
	प्रस्तावना	1
१	कृष्ण की आत्मकथा	2 - 51
२	द्रोण की आत्मकथा	52 - 59
३	कर्ण की आत्मकथा	60 - 68
४	गांधारी की आत्मकथा	69 - 77
५	द्रौपदी की आत्मकथा	78 - 82
६	अभिशप्त कथा	83 - 90
७	वीर शिवाजी	91 - 100
८	एकलिंग का दीवान	101 - 105
९	घरौंदा	106 - 107
१०	समय साक्षी है	108 - 110
११	विभाजित सवेरा	111 - 113
	निष्कर्ष	114 - 115

प्रस्तावना :

साहित्यकार मनु शर्मा का साहित्य संसार विशाल है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में उन्होंने अपनी सक्षम लेखनी का परिचय दिया है। पाठ्यपुस्तकों से लेकर पत्रकारिता लेखन तक विशाल पृष्ठभूमि में अजरामर कृतियों का निर्माण किया है। फिर भी उनकी प्रसिद्धि का मुख्य आधार उपन्यास लेखन ही रहा है। लेखक मनु शर्मा ने छोटे-मोटे अठारह उपन्यासों की निर्मिति की है जिसमें आठ खंड़ों वाले 'कृष्ण की आत्मकथा' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेखक ने मुख्यत: इतिहास व प्रागैतिहास को आधार बनाकर उपन्यासों की नींव रखी है। राणा सांगा, छत्रपति शिवाजी महाराज तथा बप्पा रावल इन इतिहास संमत महापुरुषों को अपनी लेखनी से पुन: जीवित किया तथा उनके महान कार्यों व उनकी वैचारिकता को क्षेत्रीय स्तर से उठाकर राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाने का काम लेखक ने किया है। आत्मकथन शैली में महाभारत के महत्त्वपूर्ण पात्र कृष्ण, कर्ण, द्रोण, द्रौपदी तथा गांधारी को औपन्यासिकता प्रदान कर आधुनिक मानवीय वृत्तियों को मिथकीय रूप दिया है। पत्रकारिता जगत से जुड़े रहने के कारण उनके साहित्य में भी वर्तमान को अधिक महत्व है। उनके प्रागैतिहासिक पात्र भी सद्य स्थितियों में जीते हैं। सद्यकालीन समस्याओं को उन्होंने हमेशा से अपने लेखन का आधार बनाया है। उन्होंने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं का उद्घाटन अपने उपन्यासों में किया है। कर्म से पत्रकार व धर्म से अध्यापक होने के चिह्न उनके उपन्यासों में दिखाई देते हैं। मानवी समस्याओं के चित्रण के साथ शाश्वत समाधान उनके उपन्यासों का मर्म है। भारतीय चिंतन के आलोक में उन्होंने अपने उपन्यासों में नैतिक मूल्यों को अधोरेखित किया है। उनके द्वारा रचित उपन्यासों का विवेचन संक्षेप में निम्नांकित है-

I) कृष्ण की आत्मकथा –

यह एक बृहद उपन्यास है जिससे इसकों आठ खंडों में विभाजित किया गया है।

1. कृष्ण की आत्मकथा भाग-1 : नारद की भविष्यवाणी:

पौराणिक विशाल चरित्र 'कृष्ण' के सर्वांग को संपूर्णता में प्रस्तुत करने के लिए मनु शर्मा ने 'कृष्ण की आत्मकथा' नामक विशाल उपन्यास का निर्माण सन् 1992 से सन् 2005 तक किया, जो आठ खंडों में विभाजित है। उसमें पहला भाग है- 'नारद की भविष्यवाणी'। वास्तव में इतने बड़े मिथकीय पात्र और उससे निर्माण घटनाओं की आधुनिक मनोविज्ञान की कसौटी पर पुनर्व्याख्या करना अत्यंत कठिन कार्य है। हिंदी आलोचक बच्चन सिंह कहते हैं, "कृष्ण का चरित्र विसंगतियों से भरा पड़ा है। वे रागी भी हैं, विरागी भी; योगी भी हैं, भोगी भी; नर भी है, नारायण भी; रण-दुर्मद भी है और रणछोड़ भी; चक्रधर भी हैं और मुरलीधर भी। इतनी विसंगतियों को संगति देना साधारण कार्य नहीं है।"[1] लेखक मनु शर्मा जी ने कृष्ण जन्म के पूर्व की परिस्थितियों से लेकर उनके बाल्यकाल और कुमार अवस्था तक की क्रियाकलापों का वर्णन नारद की भविष्यवाणी खंड में किया है। मनु शर्मा जी ने पौराणिक ग्रंथों में वर्णित भगवान रूप श्री कृष्ण को इस उपन्यास में मनुष्य रूप प्रदान किया है। क्योंकि लेखक स्वयं स्वीकार करते हैं कि, "ईश्वर ने मनुष्य को बनाया है या नहीं यह विवाद का विषय हो सकता है, पर मनुष्य ने ईश्वर को अवश्य बनाया है, यह निर्विवाद है।"[2]

उपन्यास की शुरुआत अत्याचारी, अनाचारी और निरंकुश सत्ताधिश कंस की मृत्यु की भविष्यवाणी से होती है। यह भविष्यवाणी तत्कालीन प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य नारद जी ने की थी। परंतु कंस के भविष्य को नारद जी ने जिस प्रकार उद्घाटित किया है वह एक निरंकुश शासक द्वारा पीड़ित प्रजा की आह है, "इन तलवारों से तुम अपनी निरपराध प्रजा का गला

---

[1] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 1 नारद की भविष्य वाणी, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ.5

[2] वहीं, पृ.9

काट सकते हो, पर नारद की आवाज़ नहीं दबा सकते, क्योंकि तुम सत्य का गला नहीं घोट सकते। और इस समय मेरी वाणी से युग सत्य बोल रहा है।"[3] नारदजी कंस के अंत को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, "धधकते अंगारे को कभी इसका ज्ञान नहीं रहता है कि उसका तपन दूसरों को जलाए या न जलाए, पर उसे तो जलाकर राख ही कर डालेगा।"[4] नारद की चेतावनी से भरी भविष्यवाणी के परिणाम स्वरूप कंस देवकी और वसुदेव को मारने के लिए उतावला होता है परंतु आचार्य गर्गाचार्य अपने बुद्धिचातुर्य से देवकी और वसुदेव के प्राण बचा लेते हैं। कंस उन्हें कारागृह में डाल देता है।

कंस ने अपनी मृत्यु को परास्त करने के लिए देवकी की छ: संतानों की हत्या कर दी थी। छंदक की कूटनीति के चलते कंस को देवकी के सातवें संतान के प्रति अधिक आशंका होने लगी। छंदक कूटनीति से जनता के संमख कंस की जघन्य क्रूरता प्रदर्शित करने के लिए विशेष समारोह का आयोजन करके देवकी के सातवें संतान की हत्या करवाता है। जिससे जनता का मन कंस के प्रति क्रोध से भर जाता है।

वसुदेव की आठवीं संतान के समय छंदक दासी सुवासिनी और अमात्य प्रद्योत को अपनी योजना में सम्मिलित करके वसुदेव से स्वयं के और नंद के अपत्यों की अदलाबदली करवाते है। दूसरे दिन देवकी द्वारा पुत्री को जन्म देने की खबर कंस को दी जाती है। कंस उस शिशु की हत्या करके अपने को निर्भय बना लेता है। देवकी और वसुदेव की कारागृह से मुक्ति की जाती है। मथुरा एक बार फिर निराशा से भर जाती है। मथुरावासी कंस की मृत्यु और उनके तारणहार की प्रतीक्षा कर रहे थे लेकिन देवकी की संतान को कंस द्वारा मरणोत्सव मनाए जाने से फिर वे गहन मानसिक अंधकार में चले जाते हैं।

कुछ ही दिनों में कंस के गुप्तचरों ने कंस को देवकी के आठवें संतान के जीवित होने की सूचना दी। इसी बीच सुवासिनी भी गायब हो गई जिससे कंस की शंका और गहरा गई।

---

[3] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 1 नारद की भविष्य वाणी, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ.12

[4] वहीं, पृ.11

वह समझ नहीं पा रहा था कि इतनी कड़ी व्यवस्था के बावजूद यह सब कैसे घटित हुआ। अमात्य प्रद्योत की पूछताछ होने लगी। सत्य बताने के लिए प्रद्योत की पत्नी महादेवी पर भी जोर डाला जाने लगा। महादेवी पर सत्य छुपाने के अपराध में अपनी दो संतानों की हत्या करने का दबाव डाला जाने लगा। जिसके परिणाम स्वरूप वह अचेतन अवस्था में चली गई।

गोकुल में कृष्ण यशोदा की गोद में पलने लगे। कृष्ण बाल्यकाल से ही हठी थे। उनके छोटे-छोटे हठ तो पूरे किए जाते किंतु एक दिन वे आकाश में दिखने वाले चंदा मामा की माँग करने लगे। यशोदा ने समझाने की बहुत कोशिश की लेकिन कृष्ण नहीं माने तो यशोदा माँ ने एक बड़ी परात में पानी भरकर खुले आँगन में रख दिया। चंद्रमा का प्रतिबिंब जल में पड़ने लगा। कृष्ण उसी चंद्रमा के साथ खेलने लगे। बंसी के प्रति सहज आकर्षण के बारे में कृष्ण कहते हैं, "बहुदा गोप मुझे गोद में उठाकर गाय चराने भी ले जाते थे। इसी प्रसंग में वंशी मेरे हाथ लगी और ऐसी लगी कि आज तक नहीं छूटी। मैं उसके बिना नहीं रह सकता, वह मेरे बिना नहीं रह सकती। उसे देखते ही लोगों को सहज मेरी सुधि आ जाती है। अब तो वह मेरा प्रतीक बन चुकी है।.....वंशी में लोगों को मेरे जीवन की छवि अधिक दिखाई दी। मेरे नाम के कई पर्याय वंशी को देखकर बन गए-यथा वंशीधर, मुरलीधर आदि।"[5] कृष्ण अपने बचपन की बुराईयों का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करते हैं, "बच्चों की इच्छा जब दबाई जाती है, तब कोई-न-कोई विकृति उनमें पैदा हो जाती है। यदि माता-पिता का स्नेह मुझे इतना न बाँधता तो शायद बहाना बनाने, झूठ बोलने और चोरी करने की विकृतियाँ मुझमें पैदा न होती।"[6]

नंद द्वारा कृष्ण के जन्म की सूचना कंस से छिपाना और गोकुल में अकाल के दिनों

---

[5] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 1, नारद की भविष्य वाणी, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ.74-75

[6] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 1, नारद की भविष्य वाणी, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ.77

में नंद द्वारा कृष्ण के हाथों अनाज बाँटना इससे कंस के मन में शंका उपस्थित होने लगी कि यही देवकी की आठवीं संतान हो। कंस द्वारा कृष्ण को मारने के लिए भेजे गए तृणावर्त बहेली की मौत, कृष्ण के स्पर्श से छंदक के आँखों की रोशनी लौटना आदि चमत्कारों को कंस स्वीकार नहीं कर पा रहा था। उसने छंदक को भी अपने महल से निकाल दिया। एक दिन अचानक प्रद्योत के दोनों बच्चे गायब हो गए। महादेवी और प्रद्योत को कंस द्वारा छुपाने या मारने की शंका उत्पन्न हो रही थी। बच्चों के वियोग ने और शंकाकुल मन ने महादेवी को तोड़ डाला। वह फूट-फूटकर रोती या दहाड़ मारकर चुप हो जाती। प्रद्योत महादेवी को लेकर कंस के पास चले गए। अपने बेटे लौटाने की बिनती की। कंस ने उलटा उनपर ही बच्चों को छुपाने और नाटक करने का आरोप लगाया। "कंस को हर बच्चे में अपनी मृत्यु दिखाई देती थी। उनके स्वयं के निपूते होने की और संसार को निपूता बनाने की बात कहीं। इतना सुनते ही महादेवी सज्ञाशून्य होकर गिर पड़ी। अद्भुत स्थिति थी। शरणागत की व्यग्रता चरम सीमा पर और शरण्य की व्यग्रता की चरम सीमा पर। शरणागत अपने बच्चों की मृत्यु से चिंतित और शरण्य स्वयं अपनी मृत्यु से चिंतित। दोनों का चिंतन मृत्यु पर टँगा और टिका।"[7] उस दिन से महादेवी को दौरे पड़ने लगे। महादेवी का पागलपन बढ़ रहा था। उसे जानने वाली हर कोई नारी अब उसके निकट नहीं फटकती थी। बच्चे उसकी छाया से डरते थे।पुत्रवियोग ने महादेवी को विकृत बना दिया। उसने उद्यान में खेलते बच्चों की हत्या कर दी। इन हत्याओं के बाद उसे राक्षसी माना जाने लगा। माताएँ भी उसे 'न पुत्रा' कहकर गालियाँ देती थी।

न पुत्रा! पुत्र ना!! पूतना!!!

अब उसका नाम ही पूतना पड़ गया था। मार्गों पर, विथियों में वह जिधर से निकलती, औरतें बड़बड़ाने लगती, "हटो, हटो, पूतना आ रही है। बच्चों को चबा जाने

---

[7] वहीं, पृ.124

वाली पूतना।"[8] महादेवी पागल हो गई थी और लोगों ने उसे राक्षसी मान लिया था। मदद के लिए लोगों ने जब महाराज से गुहार लगाई तो मदद करने के बजाए और बच्चे पैदा करने की सलाह दी। महादेवी के बच्चों को छुपाने के पीछे छंदक की कूटनीति थी। छंदक प्रद्योत को महाराज कंस के विरोध में उपयोग में लाना और कंस को अमानवीय दिखाना चाहता था। कंस ने कृष्ण को मारने के लिए तेज धावक शकट को भेजा था। परंतु उसकी गूढ मृत्यु से विचलित होकर कंस ने फिर से नई योजना बनाई और उसके चलते पूतना बनी महादेवी पर दबाव डालकर कृष्ण को विष स्तनपात कराने के लिए गोकुल भेजा। महादेवी अपने पापों के प्रायश्चित के रूप में स्वयं विषपान कर मृत्यु को अपना लेती है। उसकी मृत्यु के लिए कृष्ण को जिम्मेदार मानकर कंस कृष्ण को चमत्मारी मानने लगता है।

एक दिन श्रृतिकेतु अपनी कीर्तन मंडली के साथ गोकुल आए थे। आचार्य श्रृतिकेतु ने कृष्ण को शिष्य बना लिया। उनका मानना था कि, "शिष्य को अच्छे गुरू बहुत मिल सकते हैं, पर गुरू को कोई योग्य शिष्य बड़े भाग्य से मिलता है।"[9] आचार्य श्रृतिकेतु ने अपनी मंडली को विदा करते हुए गोकुल में श्री कृष्ण को नृत्य, गायन और वादन सिखाने का निर्णय लिया। अत्यल्प अवधि में कृष्ण नृत्य, गायन और वंशीवादन में निपुण हो गए। धीरे-धीरे राधा कृष्ण का प्रेम भी विकसित हो रहा था। कंस के कृष्ण को मारने के षडयंत्र भी बढ़ते गए परंतु छंदक के प्रतिषडयंत्र ने उन्हें विफल कर दिया। कृष्ण को मारने के लिए भेजे गए अघ और बक की मृत्यु से कृष्ण के ईश्वरत्व पर मुहर लगती गई। परंतु कृष्ण हमेशा बुद्धि से काम लेते हुए सामाजिक अंधविश्वासों का विरोध किया। इंद्रपूजा का विरोध करते हुए प्रकृति पूजा के रूप में गोवर्धन पर्वत की पूजा की। वर्षा में इसी गोवर्धन की गुफाओं ने व्रज के वासियों की रक्षा की।

कंस के श्वसुर जरासंध ने चक्रवर्ती बनने की आकांक्षा से अश्वमेघ यज्ञ करने का

---

[8] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 1, नारद की भविष्य वाणी, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ.130

[9] वहीं, पृ.204

संकल्प किया और अश्वमेघ यज्ञ की सेना का सेनापति कंस को नियुक्त किया गया। कंस मथुरा छोड़कर इस मुहिम पर चला गया। छंदक ने मौके का फायदा उठाते हुए लोगों में सिंहासन की रिक्तता का बोध करवाकर अराजकता की स्थिति उत्पन्न करा दी। कंस ने वापस आने पर स्थिति पर पकड़ मजबूत करने की कोशिश की लेकिन अराजकता इतनी बढ़ गई थी कि उसके लिए स्थिति पर काबू पाना आसान न रहा। महामात्य प्रद्योत ने भी पहली बार कंस का प्रखरता से विरोध किया। ऐसे में कंस ने मथुरा का शासन मागधी सेना के हाथ में सौंप दिया जिससे मथुरा की सेना में नाराज़गी का स्वर उभर रहा था। कंस ने स्थितियों पर काबू पाने की कोशिश की। कंस और वृतघ्न ने एक षडयंत्र बनाकर धर्नुयज्ञ को आयाोजन करके उसके लिए कृष्ण को आमंत्रित करने के लिए अक्रुर को भेजने की तैयारी की।

'नारद की भविष्यवाणी' कृष्ण की आत्मकथा का पहला भाग होने के कारण कृष्ण का संपूर्ण चरित्र इसमें दिखाई नहीं देता। कृष्ण जन्म की पूर्वपीठिका, बाल्यकाल की घटनाओं और गोकुल के कृष्णमय वातावरण और मथुरा की राजनीतिक स्थितियों का ही जिक्र इस भाग में हो पाया है। लेखक मनु शर्मा ने कृष्ण को कहीं भी अलौकिक दिखाने की कोशिश न करते हुए कृष्ण के पौराणिक आख्यानों का मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रस्तुत करने की कोशिश की है। भाषा और संवाद उस काल के वातावरण को उभारने में समर्थ हैं। साथ ही आधुनिक सार्वत्रिक प्रवृत्तियों को भी चित्रित करती है। कृष्ण के बाल रूप में सामान्य बालकों की भाव-भंगिमाओं का अंकन किया है। जिससे यह उपन्यास वास्तविकता के अत्यंत निकट महसूस होता है।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि लेखक मनु शर्मा ने प्रागैतिहासिक कृष्ण संबंधी कथानक को आधुनिक रूप दिया है। जिसके तहत कृष्ण की बाललीलाएँ छंदक के षड्यंत्र का परिणाम है। छंदक द्वारा कंस के हस्तकों को उपन्यास में आधुनिक षडयंत्रों से मार देता है। साथ ही कृष्ण को मनुष्य रूप में अवतरित करता है। उपन्यास प्रागैतिहासिक कथानक पर

आधारित होकर भी चमत्कारों से कोसों दूर है। इससे उपन्यास पूर्ण रूप से आधुनिक तथा वैज्ञानिक बनता है। उपन्यासकार ने लोगों के मनोविज्ञान का बखूबी चित्रण किया है जो श्रद्धारत होने पर तार्किकता से कोसों दूर पहुँचकर एक बालक में भगवान का रूप देखते हैं। लेखक ने कृष्ण के बालहठ में सामान्य बालकों के हठ के दर्शन कराए हैं। इन प्रसंगों में औपन्यासिक कृष्ण सामान्य नटखट बालकों के मिथक बन जाते हैं। राधा के संग प्रेमपूर्ण प्रसंगों में कृष्ण आधुनिक प्रेमियों के मिथक बन जाते हैं। 'गोवर्धन पूजा' रचकर बुजुर्गों का विरोध करते हुए प्रकृति पूजा की नवीन प्रथा का निर्माण तथा अंधश्रद्धा रूपी 'इंद्र-पूजा' का विरोध करते हैं। यहाँ कृष्ण आधुनिक विज्ञान के पक्षधरों के मिथक बन जाते हैं। रास-लीला के माध्यम से राधा को पारिवारिक तथा सामाजिक बंधनों से मुक्त करके आधुनिक समाज सुधारकों के रूप में प्रासंगिक नजर आते हैं। जिससे यह उपन्यास वास्तविकता के अत्यंत निकट महसूस होता है।

2. 'कृष्ण की आत्मकथा' भाग-2 : दुरंभिसंधि

दुरंभिसंधि खंड 'कृष्ण की आत्मकथा' उपन्यास की 'नारद की भविष्यवाणी' खंड के पश्चात की कड़ी है। कृष्ण को मारने की अन्यान्य विफल योजनाओं के संचालन करने के बाद कृष्ण को ही मथुरा बुलाने की कंस ने योजना बनाई जिससे नंद-यशोदा, वसुदेव से लेकर सारे व्रजवासी चिंतित हो उठे। कृष्ण गुरू आ. श्रृतिकेतु ने सबको समझाते हुए कृष्ण की क्षमताओं पर विश्वास रखने के लिए कहा। चिंतित सारी मथुरा कृष्ण के लिए व्यग्र थी। मात्र राधा की सौतेली माँ कपिला ने कृष्ण को व्रज से हटाने के लिए ईश्वर से आशीर्वाद माँगते हुए पूजा की थी। यह पूजा बिल्कुल गुप्त पूजा थी, जिसके कारणों का पता राधा तक को नहीं था। कपिला के कड़े बंधनों के कारण राधा कृष्ण के मथुरा चले जानेवाली बात से अपरिचित थी। भविष्यकालीन स्थितियों पर चर्चा करने के लिए अक्रुर गर्गाचार्य के पास गए थे जहाँ छंदक पहले से उपस्थिति थे। मथुरा में कृष्ण की सुरक्षा संबंधी चर्चा हुई। अक्रुर के व्रज आने के पूर्व कुब्जा के पिता कर्मा अक्रुर से मिलते हैं और अपनी पुत्री मालिनी के कृष्ण

मिलन की इच्छा और उसकी बीमारी के बारे में बताते है और इच्छा प्रकट करते है कि कृष्ण उनके घर पधारे। इस सारे निवेदन के पीछे छंदक के विचार थे। अक्रुर का गोकुल में स्वागत किया जाता है। कंस के आमंत्रण में कंस की मंत्रणा को ढूंढने की कोशिश की जाती है। छंदक कंस के बारे में साशंक थे। इसीलिए कृष्ण की मथुरा में सुरक्षा को लेकर वे चिंतित थे। अक्रुर के समझाने पर भी वे बात को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। उनका मानना था कि, “सांप कितना भी बदलेगा, पर वह विषहीन तो हो नहीं सकता। विष उसकी जैविक क्रिया का परिणाम है; उसके जीवधर्म से जुड़ा है।”[10] छंदक की चिंताओं का यह परिणाम हुआ कि बाकी लोग भी चिंतित होने लगे। नंद तो कृष्ण के मथुरा जाने के पक्ष में नहीं थे। आचार्य श्रृतिकेतु के कृष्ण संबंधी विचारों से नंद की घबराहट कम हो गई और वे राजी हो गए। कृष्ण की योग्यताओं को स्पष्ट करते हुए आ. श्रृतिकेतु छंदक को समझाते हैं कि, “तुमने अब तक जो चनिगारियाँ बोई हैं, वह फसल पकने को आई हैं। यदि मौके पर तुमने उसके काटा नहीं तो भेड़िए उसे खा जाएँगे। तुम आज ही चले जाओ और उसे काटने की तैयारी करो।”[11] श्रृतिकेतु द्वारा विश्वास दिलाने और अक्रुर द्वारा ज़िम्मेदारी लेने के पश्चात कृष्ण का मथुरा जाना निश्चित हो गया। राधा कृष्ण के मथुरा जाने की सूचना पाकर जिद कर बैठती है कि वह भी कृष्ण के साथ मथुरा जाएगी। लगभग यही अवस्था हर एक की थी। माँ यशोदा विरह की कल्पना से ही विव्हल हो उठी। राधा मूर्छित हो गई। सारा गोकुल विरह पीड़ा से गुजर रहा था। कृष्ण कहते हैं, “मैंने कभी सोचा नहीं था कि ऐसी स्थिति हो जाएगी। जैसे हर व्यक्ति मान रहा था कि मैं सदा के लिए जा रहा हूँ। अब कभी नहीं लौटूँगा। यह चिर वियोग की व्यथा कल्पनातीत थी।”[12] गोकुल वियोग की बाढ़ के चलते कृष्ण ने मथुरा जाना एक दिन के लिए टाल दिया। संपूर्ण रात्र गोपियों और राधा के साथ कृष्ण ने रास लीला खेली। फिर अगले दिन बलराम के साथ मथुरा चले गए।

---

[10] मनु शर्मा, ‘कृष्ण की आत्मकथा-भाग 2, दुरंभिसंधि, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 26

[11] वहीं, पृ. 28

[12] मनु शर्मा, ‘कृष्ण की आत्मकथा-भाग 2, दुरंभिसंधि, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 30

कृष्ण के गोकुल छोड़ते ही मथुरा में गतिविधियाँ तेज हो गई। हस्तिपाल अंगारक के साथ सहयोगी हस्तिपाल के रूप में मागधी हस्तिपाल जोड़ दिया गया। जिससे अंगारक नाराज़ थे। अंगारक ने इस संबंधी छंदक से भी चर्चा की। कंस की कुटिलता को स्पष्ट करते हुए छंदक कहता है, "राजनीति बड़ी कुटिल होती है, अंगारक! राजनीति की आँच हिमकुंड में भी पलना जानती है और काम निकलते ही उसे भी वह भाँप बनाकर उड़ा देती है।"[13] कृष्ण के मथुरा पहुँचते ही छंदक की योजना के अनुसार रथ पर सँवार न होकर पदयात्रा आरंभ की। इसके कई कारण थे एक तो मथुरावासी कृष्ण को तारणहार समझ रहे थे और उनसे मिलना चाहते थे। कृष्ण को मथुरा जनमत अपने पक्ष में करना था। कृष्ण मालिनी त्रिवक्रा के घर गए और वैद्य जी के साथ किए गए पूर्व परामर्श अनुसार उसका इलाज भी किया। कंस के षडयंत्र के प्रति सचेत रहकर धर्नुयज्ञ के बहाने बनाए गए लोहे के धनुष्य को तोड़ डालते है। साथ ही मल्ल युद्ध में कृष्ण और बलराम द्वारा चाणूर और मुण्ठिक को मार गिराने से स्वयं कंस कृष्ण को ललकारते है और कृष्ण द्वारा कंस मारे जाते है। कंस की मृत्यु पश्चात उसके पिता उग्रसेन को राजा बना दिया जाता है। मथुरा में ही विदर्भ राजकन्या रूक्मिणी से कृष्ण की मुलाकात हो जाती है।

कृष्ण की विधिवत शिक्षा नहीं हुई थी। इसलिए महाराज उग्रसेन चाहते थे कि कृष्ण का उपनयन किया जाए। आचार्य गर्गाचार्य के सुझाव पर महाराज ने आचार्य सांदीपनि की भेंट ली और कृष्ण के विधिवत आचार्यत्व का पद ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया।आचार्य सांदिपनि के स्वीकारोक्ति से कृष्ण, बलराम और सुदामा उनके शिष्य बन गए। कृष्ण ने मात्र चौंसठ दिनों में सारी विद्या सीख ली। सांदिपनि के आश्रम में ही कृष्ण को सुदामा नामक साथी मिला। शिक्षा ग्रहण के पश्चात वैवस्वतपुर के राजा पांचजन्य को मारकर सांदिपनि पुत्र ऋत को मुक्त करके कृष्ण ने आचार्य सांदिपनि को गुरूदक्षिना दी। कृष्ण जब वापस मथुरा पहुँचे तो वहाँ की विपरीत परिस्थितियों का उन्हें अंदाजा हो गया। जरासंध के

---

[13] वहीं, पृ. 34

आक्रमण की आशंका थी। सैनिकों की स्थिति देखकर कृष्ण इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि युद्ध करने की स्थिति में मथुरा नहीं है। साथ ही जरासंध ने मात्र कृष्ण-बलराम को अपना शत्रु मान लिया है। मथुरा को रक्तरंजित इतिहास से बचाने के लिए उन्होंने रणछोड़ की नीति अपनाते हुए कहा कि, "एक नीति निपुन योद्धा की भाँति, जो अपनी तलवार पर ही नहीं, अपनी बुद्धि पर भी भरोसा करता है। नीतिविहीन रणनीति एक आग है, जिसकी लपटें शत्रु की अपेक्षा स्वयं को ही अधिक गहराती है।"[14] बलराम और अन्य लोग भाग जाने के विकल्प के लिए तैयार नहीं थे लेकिन कृष्ण ने उन्हें समझाया कि इस समय यही सबसे उचित नीति है। और वे प्रात: बलराम, उद्धव समेत सौराष्ट्र की ओर निकल पड़े।

मार्ग में उन्हें कुंडिनपुर में रूक्मिणी स्वयंवर रचे जाने की जानकारी मिली। लेकिन रूक्मिणी ने अनिच्छा दिखाई और रूक्मी मथुरा पर आक्रमण करने के लिए निकल पड़ा। इस कारण वह टाला गया। कृष्ण ने कुंडिनपुर जाकर रूक्मिणी से भेंट ली और उसे आश्वस्त भी कराया।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इस खंड में कृष्ण का मिथकीय रूप परिवर्तित हो गया है। कंस वध से उनका तारणहार रूप उभरकर सामने आता है। सांदिपनि आश्रम में उनका आचरण एक आदर्श विद्यार्थी के मिथक के रूप में उभरता है। त्रिवक्रा (मालिनी) की बीमारी ठीक करने से वे आयुर्वेद के ज्ञाता नजर आते हैं। लेखक ने यहाँ उपन्यास को आधुनिकता से जोड़ते हुए पौराणिक चमत्कारिक घटनाओं को हटाकर उसे वैज्ञानिक रूप दिया है। कृष्ण-त्रिवक्रा व कृष्ण-रूक्मिणी प्रेम कृष्ण के मिथकीय चीर प्रेमी रूप को अधोरेखित करता है। इस खंड में कृष्ण की राजनीतिक सोच विकसित होती दिखाई देती है। कृष्ण का रणछोड़ रूप आधुनिक सुझबुझ वाले राजनेताओं के मिथक के रूप में उभरता है। साथ ही यह पलायन जनता हितैषी नेता के आचरण को अधोरेखित करता है। यादवों को एकजुट बनाए रखने की कोशिश कृष्ण की आधुनिक संघीय नेता का मिथक प्रतिपादित

---

[14] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 2, दुरंभिसंधि, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 405

करता है। इस प्रकार प्रस्तुत खंड में कृष्ण के माध्यम से आधुनिक राजनीतिक अस्तित्ववादी समस्याओं तथा योग्य नेता के आचरण को प्रस्तुत किया है, जो सद्य स्थिति में अत्यंत प्रासंगिक है।

3. 'कृष्ण की आत्मकथा' भाग-3 : द्वारका की स्थापना -

स्वयं की रक्षा और मथुरा की सुरक्षा के लिए कृष्ण ने मथुरा से पलायन किया इस प्रसंग से 'द्वारका की स्थापना' खंड की शुरुआत होती है। जरासंध के सामर्थ्य को देखते हुए कृष्ण ने शुरू में महेंद्र पर्वत पर महाभार्गव के आश्रम में कुछ समय तक आश्रय पाया लेकिन महाभार्गव के सुझाव से फिर वे आगे निकल पड़े। गोमंतक पर्वत के जंगलों में अपने को सुरक्षित बनाए रखा। आदिवासियों के राजा गरूड़केतु के बेटे तिरूदत्त की कुबड़ की बीमारी कृष्ण ने ठीक करा दी। कंस का वध और तिरूदत्त की बीमारी को ठीक करने की वजह से कृष्ण के भगवान रूप होने पर आदिवासियों का विश्वास पक्का होता गया, जिससे कृष्ण के प्रति वे हमेशा समर्पित रहें। गोमांतक पर्वत के भौगोलिक और ऐतिहासिक स्थितियों का अध्ययन करने के पश्चात् कृष्ण ने तिरूदत्त की सहायता से पर्वत की खुदाई आरंभ की जिसमें समुद्री दुर्ग के साथ शस्त्रास्त्र, मूल्यवान रत्नधातु पाए गए। जरासंध ने कृष्ण का पता पाकर गोमंतक पर आक्रमण किया किंतु कृष्ण ने भौगोलिक स्थितियों का लाभ उठाते हुए उसे परास्त करके बंदी बनाया। बाद में बंदिवान जरासंध को कृष्ण ने मुक्त भी कर दिया। करवीरपुर के राजा श्रुंगलव ने कृष्ण मित्र उद्धव को बंदी बनाया था। साथ ही परशुराम के आश्रम के अनेक साधुओं को कारा में डाल दिया था। श्रुंगलव ने स्वयं को भगवान वासुदेव का अवतार घोषित किया था और जो भी इसे अस्वीकार करता उसे वह कारा में डाल देता। कृष्ण ने परशुराम की आज्ञा से श्रुंगलव का वध करके उद्धव और सभी साधुओं को मुक्त कराया। श्रुंगलव के पुत्र शुक्रदेव को करवीरपुर का राजा बनाया। करवीरपुर में कृष्ण को अपने आश्रम के साथी श्वेतकेतु से पुन: भेंट होती है। जिसने शैव्या (श्रुंगलव की बहन) के लिए आश्रम जीवन त्याग दिया था। कृष्ण ने उसे अपना साथी बना लिया और उसे जरासंध

की जानकारी प्राप्त कराने के लिए कुंडिनपुर भेज दिया। जिससे जरासंध के कृष्ण संबंधी अपप्रचार की खबर मिली। साथ ही जरासंध ने चेदी और कुंडिनपुर को मथुरा के विरूद्ध अपना साथी बनाने के लिए अपनी पुत्री का विवाह रूक्मी से और रूक्मिणी का विवाह शिशुपाल से कराने की योजना बना रखी थी। कृष्ण करवीरपुर से सांदीपनि के अवंती आश्रम पहुँचे तब उनकी मुलाकात कुशस्थली की पूर्व राजकुमारी रेवती से होती है। सांदीपनि आचार्य कृष्ण और बलराम को उसकी सारी कथा सुनाते है। कुकुदिमन (रेवती के पिता) पर समुद्री राक्षसों ने आक्रमण करके कुशस्थली को हथिया लिया था जिससे विक्षिप्त होकर प्रतिशोध की भावना लेकर कुकुदिमन आचार्य परशुराम के पास गए और रेवती को शस्त्र शिक्षा के लिए शिक्षित करने का आग्रह किया तब आचार्य परशुराम ने उन्हें समझाते हुए कहा, "प्रतिशोध प्रतिक्रियात्मक होता है, संकल्प क्रियात्मक। प्रतिशोध में बदले की भावना है, संकल्प में हमारा कर्तव्यबोध। प्रतिक्रियात्मक होने से प्रतिशोध का लक्ष्य किसी व्यक्ति या समुदाय तक ही होता है, पर संकल्प का लक्ष्य उदात्त होता है।"[15] आचार्य परशुराम के कहने पर आचार्य सांदीपनि ने रेवती को गदायुद्ध के लिए शिक्षित किया। आचार्य सांदीपनि के सुझाव पर कृष्ण ने कुकुदिमन से मिलकर समुद्री राक्षसों पर आक्रमण की योजना बनाई जिसके पीछे स्वयं का एक राज्य स्थापित करने की एक मनीषा थी। एक योजना के अनुसार कृष्ण ने बलराम को शेषनाग का अवतार रूप प्रचारित कर दिया जिससे बलराम को लोगों का समर्थन प्राप्त हो और विरोधियों पर गहरा मानसिक प्रभाव हो। इसका महत्व समझाते हुए कृष्ण कहते है, "आज का युद्ध पराक्रम से कम और प्रचार से अधिक जीता जाता है।"[16] कृष्ण ने बलराम के लिए अवंतीराज जयसेन का युद्ध में सहयोग प्राप्त किया। बलराम और उद्धव को युद्ध के लिए भेजकर कृष्ण स्वयं शैव्या के साथ मथुरा की ओर चले। छंदक से उन्होंने मथुरा की स्थितियों की जानकारी प्राप्त करा ली। कंस की बहन

---

[15] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 3, द्वारका की स्थापना, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 129

[16] वहीं, पृ. 144

कंसा अपने पुत्र बृहदबल को मथुरा का युवराज बनाना चाहती थी। इसीलिए वह महाराज उग्रसेन पर भी दबाव डाल रही थी। कृष्ण ने महाराज उग्रसेन की भेंट ली। माँ देवकी के पास शैव्या को सौंप दिया। छंदक से मथुरा संबंधी चर्चा की तब उन्हें पता चला कि बृहदबल को राजकुमार बनाने के पीछे जरासंध, वसुमति पुत्र भद्रक और सत्यभामा के पिता सत्राजित है। कृष्ण ने महाराज से यादवों की सभा का आयोजन करवाया जिसके कारणों को स्पष्ट करते हुए कृष्ण कहते हैं, "आप शासन में जनता की भागीदारी बढ़ाएँगे उतनी ही सत्ता शक्तिशाली होगी और आपका दायित्व भी कम होगा।"[17] युवराज पद को लेकर भद्रक, सत्राजित और कृष्ण में शाब्दिक खिंचातानी भी हुई।

बलराम और उद्धव कुशस्थली से विजयी होकर लौटे जिससे मथुरा में उत्साह की लहर दौड़ गई। मथुरावासियों ने दोनों का जमकर स्वागत किया। बलराम ने कृष्ण को अपने विजय की कथा सुनाई साथ ही रेवती से विवाह की बात भी कही। विजय के पश्चात कुकुदिमन को राजा बना दिया जिससे कृष्ण कुछ चिंतित हो गए। वे बलराम को राजा बनाने के पक्षधर थे। बलराम ने कृष्ण को आश्वस्त किया कि वे अल्प समय के लिए राजा बनाए गए हैं जैसे ही हम वापस लौटेंगे वे अपना पद त्याग देंगे। कृष्ण ने कुशस्थली को राजधानी बनाने की योजना बनाई और उसने निर्माण के लिए विश्वकर्मा से मिलकर उसका काम अत्यंत तीव्र गति से और गुप्त रूप से चलाने की बात कही। श्वेतकेतु ने एक दिन कुंडिनपुर से आकर रूक्मिणी स्वयंवर की बात कही जिसका योजक जरासंध था ओर स्वयंवर के लिए मथुरा को आमंत्रित भी नहीं किया था। मथुरा की राजनीति भी तीव्रतर हो रही थी। यादवों में आपसी संघर्ष था। जरासंध के आक्रमण की आशंका थी इन्हीं बातों को लेकर मंत्री परिषद के साथ चर्चा की गई। यादवों की सभा में भी महाराज उग्रसेन ने एकता पर जोर दिया। कृष्ण ने बलराम के विवाह और शर्याति वंश के राजा कुकुदिमन के जामाता बनने की

---

[17] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 3, द्वारका की स्थापना, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 129

बात उद्घाटित की। युवराज के नाम को घोषित करने के लिए महाराज उग्रसेन से आग्रह होने लगा। युवराज के नाम को लेकर यादवों में विवाद शुरू हो गया। अंत में बृहदबल को युवराज घोषित किया गया। बृहदबल को युवराज बनाने में कृष्ण की राजनीति थी। बृहदबल को युवराज बनाने से जरासंध के आक्रमण की संभावना कम हो जाएगी। साथ ही रूक्मिणी स्वयंवर में मथुरा के राजपरिवार को न बुलाकर यादवों का अपमान किया है, जबकि कृष्ण स्वयं रूक्मिणी से विवाह करना चाहते थे। उसके लिए बृहदबल की अगुवाई में रूक्मिणी हरण किया जाए। शैव्या ने जब कंस और बृहदबल को कृष्ण की संभावित कूटनीति से अवगत कराया तो बृहदबल ने जरासंध से डरकर स्वयं युवराज पद त्याग दिया।

एक दिन उद्धव ने कृष्ण को शैव्या द्वारा कृष्ण की हत्या का षड्यंत्र रचे जाने की सूचना दी। वास्तव में शैव्या के मथुरा आने का कारण ही कृष्ण से अपने भाई की हत्या का प्रतिशोध लेना था। भद्रक बृहदबल के त्यागपत्र से नाराज़ होकर चले गए। सत्राजित ने भी बृहदबल का साथ छोड़ दिया लेकिन वे कृष्ण के समर्थक नहीं बने उनका आरोप था कि कृष्ण ने उनकी सम्यंतक मणि चुराई है। कृष्ण ने राजनीति के तहत बृहदबल की अगुवाई में आयोजित की गई रथ प्रतियोगिता में श्वेतकेतु को विजयी कराया और अगली रथ प्रतियोगिता माघ शुक्ल प्रतिपदा को आयोजित करने का महाराज द्वारा घोषित करवाया। विजयी श्वेतकेतु से शैव्या की कृष्ण के घर पर मुलाकात करवायी। शैव्या के प्रतिशोध के प्रति आचार्य सांदीपनि ने भी कृष्ण को अवगत कराया। मालिनी भी इसी बात को लेकर चिंतित थी। तब उसका समाधान कराते हुए कृष्ण कहते हैं, “सारी चिंता तो पता होने की है। आज के मनुष्य की सारी समस्याएँ अज्ञात से मुक्ति की है। ....तो सुन, यह ज्ञात है कि जो जनमा है वह मरेगा, पर मृत्यु कब होगी, इसका कुछ भी निश्चय नहीं। मृत्यु की यह अनिश्चितता जीवन में रस देती है।”[18] कृष्ण सावधान होकर शैव्या के हमले से अपने

[18] मनु शर्मा, ‘कृष्ण की आत्मकथा-भाग 3, द्वारका की स्थापना, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 234

आपको बचा लेते हैं साथ ही शैव्या को यह आभास होता है कि उसने अपने भाई की मृत्यु का प्रतिशोध ले लिया है। प्रात:काल होते-होते उसे कृष्ण की बाँसुरी सुनाई देती है जिससे उसे कृष्ण के देव रूप होने का विश्वास होता है। कृष्ण की सलाह के अनुसार वह क्रोध को त्याग कर श्वेतकेतु को अपना कर उसके साथ कुंडिनपुर चली जाती है।

कुशस्थली से रेवती का पत्र आता है जिसमें नगर निर्माण का काम लगभग पूरा होने और बलराम को आकर अपना राजा पद संभालने के लिए आग्रह था। कृष्ण के विचार में मथुरा से प्रजा को भी अपने साथ ले जाना आवश्यक था। लेकिन यह काम कठिन था। मथुरा पर आक्रमण के बादल मंडरा रहे थे। जरासंध-कालयवन संधि हो गई थी जिससे मथुरा का बचना बहुत कठिन था। कृष्ण ने कालयवन का भेद जानकर छंदक के जरिए उसे काला साँप भेंट किया लेकिन उसका कुछ उपयोग नहीं हुआ। कृष्ण के सामने रूक्मिणी स्वयंवर को रोकने की समस्या थी। इसलिए बृहदबल को रथ स्पर्धा का सर्वेसर्वा बनाकर रथ स्पर्धा के पश्चात उन्हीं रथों को लेकर कुंडिनपुर की ओर चले गए। जरासंध ने कृष्ण की उपस्थिति से चिंतित होकर रूक्मिणी स्वयंवर को टाल दिया। कृष्ण को जहर देकर मारने की भी कोशिश की लेकिन सफल नहीं हो पाया। कृष्ण ने रूक्मिणी को आश्वस्त भी कराया कि वे उसे अपनी पट्टमहिषी बनाएँगे। जरासंध अपनी स्वयंवर योजना में असफल होने से मथुरा पर आक्रमण की पूरी तैयारी करने लगा। महाराज उग्रसेन ने यादवों की सभा का आयोजन किया। कृष्ण ने अपनी बौद्धिक कौशल से यादवों को द्वारका के निर्माण की बात कही साथ ही सभी यादवों को साथ ले चलने की बात कही जिससे यादव भावाकुल होकर साथ चलने के लिए तैयार हो गए। अपनी राजनीति को स्पष्ट करते हुए कृष्ण कहते हैं कि, "ऐसा नहीं है कि मथुरा की सत्ता की ओर मेरा कभी मोह न रहा हो। सत्ता का सुख बड़ा मादक होता है। उसे कोई सन्यस्त मानसिकता ही ठुकरा सकती है। लोग अब मुझे में वीतरागी संन्यासी के

भी दर्शन कर रहे थे। इससे मेरे ईश्वरत्व पर एक दूसरा ही पानी चढ़ आया था।"[19]

राजनीति से कृष्ण यादवों को अपने पक्ष में करके द्वारका ले गए। मार्ग में कालयवन को भ्रमित करके मार दिया जिससे मथुरा भी बच गई। स्वयं अपनी मृत्यु की अफ़वाह फैला कर रूक्मिणी स्वयंवर के समय अचानक प्रकट होकर अपने विरोधियों को न सिर्फ भ्रमित किया बल्कि अपने चमत्कारी होने के प्रमाण दिए। रूक्मिणी के साथ विवाह रचकर द्वारकाधिश भी बन गए। इस प्रकार अपनी राजनीति और कूटनीति का परिचय देते हुए अपने अलग राज्य की स्थापना करके कृष्ण उसके राजा बन गए। इस खंड में कृष्ण की शौर्यगाथा का चमत्कार विरहीत वर्णन किया गया है।

इस तृतीय खंड में कृष्ण का मिथकीय विकास राजनीतिज्ञ से कूटनीतिज्ञ की ओर होता हुआ दिखाई देता है। कृष्ण के मन में मथुरा के प्रति आसक्ति होकर भी उसे बृहदबल को युवराज बनाया। इस घटना में कूटनीति के साथ कृष्ण का प्रजाहितैषी रूप और अधिक प्रबल होता है। कृष्ण जनता के हित के लिए अपने व्यक्तिगत इच्छाओं को विराम देते हैं। कालयवन वध में कृष्ण की बौद्धिकता पाठकों को चमत्कृत कर देती है। साथ ही मथुरा पलायन से जरासंध की समस्या का भी अंत किया है। ''उपन्यास का अंत कृष्ण बलराम के मथुरा छोड़ द्वारका की नव निर्मित राजधानी के लिए मथुरा की पूरी अपनी प्रजा के साथ जाने से होता है।...बिना युद्ध और संहारक दृश्य के जरासंध का आतंक समाप्त होता है।"[20] रूक्मिणी हरण में कृष्ण चीरप्रेमी मिथक के रूप में ओर अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। साथ ही स्त्रियों पर विवाह के लिए होती पारिवारिक ज्यादातियों को तोड़कर स्त्री स्वतंत्रता की ओर इशारा करते हैं जो आधुनिक काल में अत्यंत प्रासंगिक है।

---

[19] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 3, द्वारका की स्थापना, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 306

[20] विवेकी राय, मनु शर्मा कृत कृष्ण की आत्मकथा, डॉ. नरेंद्र नाथ, मिश्र, सोच-विचार, (मासिक), (वाराणसी, मार्च, 2016), अंक 9, पृ. 66

4. 'कृष्ण की आत्मकथा'-भाग 4 : लाक्षागृह

द्वारकाधिश बने कृष्ण का अपने राज्य की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान था इसलिए उन्होंने स्वयं धनुर्विद्या में महारत हासिल की। इसमें उनके आदर्श थे अर्जुन। द्वारका एक बहुत बड़ा व्यापार केंद्र बना हुआ था जिससे द्वारका वैभवशाली राष्ट्र बन गया था। कृष्ण का मानना था कि ''वैभव की तलवार शक्ति के म्यान में ही सुरक्षित रहती है अन्यथा मौसम का मामूली उतार-चढ़ाव भी उसमें मोरचा लगा देता है।''[21] इसलिए सैन्य शक्ति बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान दे रहे थे। कृष्ण की आत्मकथा के चौथे खंड लाक्षागृह की शुरुआत द्वारका की शासन व्यवस्था से ही होती है। एक दिन हस्तिनापुर से विदुरजी का युधिष्ठिर के युवराज पद के अभिषेक के लिए आमंत्रण प्राप्त होता है। यह अभिषेक महाराज धृतराष्ट्र की अनिच्छा और पितामह भीष्म के दबाव में संपन्न हुआ। दुर्योधन गदायुद्ध में महारत हासिल करने के लिए द्वारका में आकर आचार्य बलराम के निर्देशन में नियमित अभ्यास करने लगा किंतु उसके नियमित अभ्यास में लगन कम और पांडवों के प्रति द्वेष की भूमिका अधिक थी। आचार्य बलराम से गदाविद्या हासिल करके दुर्योधन हस्तिनापुर लौट गया।

आचार्य सांदीपनि कृष्ण को द्रुपद कन्या पांचाली से विवाह कराने के प्रस्ताव को लेकर द्वारका में आ जाते हैं। अपने कथन के लिए वे शास्त्र की पुष्टि जोड़ देते हैं लेकिन कृष्ण सुझ-बुझ के साथ इस प्रस्ताव का विरोध करते हैं। आ. सांदीपनि युधिष्ठिर की युवराज पद से हटने की सूचना भी देते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर को वारणावत भेजने की सूचना मिलते ही कृष्ण को उसमें षड्यंत्र की गंध आने लगती है। कृष्ण उद्धव को वारणावत भेजते हैं और पुरोचन पर नजर रखने के लिए कहते हैं। कृष्ण भी हस्तिनापुर जाने से पहले वारणावत पहुँचते हैं लेकिन तब तक शिवम् कल्याणकारी महल के जलने और पांडवों की कुंती समेत नष्ट होने की खबर चारों ओर फैल जाती है। उद्धव पांडवों की मृत्यु की सूचना कृष्ण को देते है। दुर्योधन द्वारा पांडवों का शव अंत्येष्टि के लिए ले जाना और विरजा द्वारा शिवम् लाक्षागृह

[21] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा भाग-4, लाक्षागृह, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.9

के रहस्य का उद्घाटन करने से कौरवों के षड्यंत्र का अंदाजा कृष्ण को आ जाता है। कृष्ण इस रहस्य से पितामह भीष्म को अवगत कराते हैं। दुर्योधन का गंगा नदी किनारे मयुरध्वज नौका में मदिरापान करना आदि बातों से क्रोधित होकर पितामह भीष्म दुर्योधन से नाराज़ हो जाते हैं। विदुर कृष्ण और प्रपितामही की भेंट कराते हैं। प्रपितामही पांडवों के जीवित होने और जंगलों में भटकने की बात बताती है। साथ ही विदुर पांडवों को ढूँढने की ज़िम्मेदारी कृष्ण पर सौंपते हैं। पांडवों की खोज में निकले कृष्ण को पांडवों का आचार्य अग्निवेश के साथ होना और पांचाल प्रदेश में ही भ्रमण करने की सूचना चित्ररथ द्वारा प्राप्त होती है। कृष्ण जब पांचाल पहुँचते है तो विुदर द्वारा भेजी हुई सूचना के अनुसार पांचाल नरेश द्रुपद कृष्ण का स्वागत करते हैं। उसे जामाता बनने का प्रस्ताव भी रखते हैं ताकि वे आचार्य द्रोण से अपने अपमान का प्रतिशोध ले सके। लेकिन कृष्ण इस प्रस्ताव का सहर्ष विरोध करते हैं और प्रतिशोध त्यागने के लिए कहते हैं। अपनी बात द्रुपद को समझाते हुए कृष्ण कहते हैं कि "आग से आग नहीं बुझाई जा सकती। तलवार से लिए गए प्रतिशोध से तलवार ही जन्म लेती है। और उसका परिणाम होता है महाविनाश। इसलिए आपको अपने संकल्प के लिए कोई विकल्प ढूँढना होगा। मैं नही चाहता कि राजाओं का ईर्ष्याग्नि प्रजा के सुख-चैन को भस्म कर दे।"[22]

पांडवों को ढूँढने की ज़िम्मेदारी कृष्ण ने छंदक पर सौंपी थी जिसे पूरी करके छंदक पांडवों के सकुशल होने, भीम (वक्रोदर) राक्षसों के राजा बनने और हिडिंबा से विवाह रचने की सूचना देते हैं। द्रुपद कन्या पांचाली भी कृष्ण से विवाह करना चाहती थी क्योंकि उसे ऐसा लगता था कि एकमात्र कृष्ण ही अपने पिता द्रुपद के अपमान का बदला लो सकते हैं लेकिन कृष्ण ने विवाह की अनिच्छा प्रकट करते हुए भाई बनने की बात कही। द्रुपद पुत्र शिखंडी रात्रि में कृष्ण से मिलकर अपने पुंसत्व न होते हुए हिरण्यवर्मा पुत्री से विवाह करने और बहू न ले जाने के कारण नाराज़ होकर हिरण्यवर्मा द्वारा पांचाल पर आक्रमण की बात

[22] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा भाग-4, लाक्षागृह, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.95

तथा स्वयं के रहस्य भेद के भय के कारण आत्महत्या की इच्छा प्रकट करते हैं। कृष्ण उसे आचार्य द्रोण के पास भेजकर शिक्षा ग्रहण करने की बात कहते हैं और उसी रात छंदक के साथ उसे आचार्य द्रोण के पास भेज देते हैं। महाराज द्रुपद शिखंडी के गायब होने और हिरण्यवर्मा के आक्रमण से चिंतित होते हैं। कृष्ण उन्हें हिरण्यवर्मा को शिखंडी के गायब होने और इसी वजह से बहू को न ला सकने की असमर्थता दर्शाता पत्र लिखवाते हैं। जिससे वे युद्ध की मंशा त्यागकर दु:ख में संम्मिलित होने के लिए आते हैं। कृष्ण द्रुपद को प्रजा परिषद बुलाकर शिखंडी के गायब होने और पांचाली के स्वयंवर की घोषणा करने का आग्रह करते हैं। शिखंडी को आचार्य द्रोण के पास छोड़कर छंदक वापस आकर कृष्ण को सूचना देते हैं कि आचार्य द्रोण ने स्थूणाकर्ण यक्ष द्वारा शिखंडी की शल्य चिकित्सा कराने की योजना बनाई है और हिडिंबा ने भीम पुत्र घटोत्कच को जन्म दिया है। कृष्ण पांचाली स्वयंवर के लिए धनुर्विद्या परीक्षा की योजना बनाकर नागकुट प्रदेश अपने पितामह से मिलने चले जाते हैं। यही उद्धव का विवाह मातुल मणिभान की दो पुत्रियों पल्लवी और पुष्पवी से होता है। दुर्योधन ने पुष्कर प्रदेश पर हमला करके और धोखा देकर चेकितान को पराजित किया। चेकितान कृष्ण से मिलकर अपनी व्यथा प्रकट करते हैं। कृष्ण उन्हें नागकुट के महामात्य बनने का प्रस्ताव देते हैं। साथ ही पुष्कर राज्य वापस दिलाने का आश्वासन देते हैं। संधि प्रस्ताव के कारण राक्षस भी नाग लोगों के मित्र बन जाते हैं। कृष्ण छंदक के जरिए अर्जुन को द्रौपदी स्वयंवर की परीक्षा का रहस्य भेद बताते हैं। साथ ही द्रौपदी स्वयंवर में उपस्थित रहने की सूचना भी देते हैं। नागकुट पांचाल, हस्तिनापुर और पुष्कर के आक्रमण से आक्रांत था। यहाँ की युवतियों को वे उठाकर ले जाते और उन्हें दासी बनाते हैं। इसलिए कृष्ण ने पांचाल सैनिक शेनभद्र के निर्देशन में सैनिक प्रशिक्षण की शुरुआत की जिससे नागकुट सुरक्षित हो। कृष्ण उद्धव को हस्तिनापुर दूत बनाकर भेजते है और चेकितान को पुष्कर राज्य लौटाने की माँग करते हैं। द्वारका लौटने के पूर्व कृष्ण अग्रवाण के राजा चारूदेष्णा से मिलकर पीड़ित और छोटे राज्यों को हस्तिनापुर के विरूद्ध एकत्रित होने की सलाह देते हैं। साथ ही

चारूदेष्णा को चेकितान से संधि करने की बात भी कहते हैं। कृष्ण द्वारका लौटने पर अनुभव करते हैं कि चारों ओर कुशासन और वासना भरा वातावरण स्थापित हो चुका है। स्वयं बलराम सुपर्णा नर्तकी और मदिरा में खुद और शासन को भूल गए है। कृष्ण रेवती भाभी के जरिए बलराम को सुधारने की योजना बनाते है। अपनी योजना समझाते हुए कृष्ण कहते हैं, "देखो भाभी! यह घर की लड़ाई है। घर की लड़ाई बाहर की लड़ाई से गंभीर और स्थायी होती है। इसे उन हथियार से नहीं जीता जाता, जिनसे बाहर की लड़ाई जीती जाती है। इनके हथियार तो कल और छल हैं, बल नहीं।"[23] वास्तव में द्वारका के विरोधियों ने द्वारका को विलासिता, वासना और षड्यंत्र का केंद्र बना दिया था। कृष्ण कूटनीति के तहत रेवती भाभी के जरिए सुवर्णा को महल ले आते है। वायुहा जो द्वारका का अमात्य और पंचजन्य का गुप्तचर है वह सुपर्णा को मारने की असफल कोशिश करता है और जब विफल हो जाता है तो षड्यंत्र का भेद खुलने के भय से स्वयं विष ग्रहण कर लेता है। उसकी मौत से विरोधी राज्यों से आए गुप्तचर लोग वापस लौटने लगते हैं। यादवों के प्रमुख नायक सत्राजित यादवों में कृष्ण विरोधी वातावरण तैयार करने लगते हैं। एक दिन सत्राजित बलराम को आमंत्रित करते हैं लेकिन कृष्णनीति के तहत उल्टा बलराम ही उन्हें द्वारका आमंत्रित करते हैं। द्वारका में उनका भव्य स्वागत होता है लेकिन कृष्ण उनकी नाराज़गी दूर नहीं कर सके। सत्राजित कौरवों से शत्रुता लेने के पक्ष में नहीं थे। इसी नाराज़गी में वे वापस चले जाते हैं। सत्राजित कृष्ण मित्र सात्यकि को अपना जामाता बनाना चाहते थे लेकिन सत्यभामा कृष्ण से प्रेम करती थी। इसीलिए सात्याकि विवाह से इनकार कर देता है। जिससे सात्यकि के पिता सत्यक भी कृष्ण से नाराज़ हो जाते हैं।

पांचाली स्वयंवर के लिए योजना के अनुसार सात्यकि द्वारका से प्रयाण करने के दिन ही गायब हो जाता है। सत्राजित द्वारा उसका अपहरण किया जाता है। सत्यभामा के तर्क और सात्यकि की होशियारी की वजह से वह सत्राजित के हाथों से छूट जाता है और

---

[23] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा भाग-4, लाक्षागृह, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.221

निश्चित समय द्वारका से प्रस्थान करता है। उसके बाद कृष्ण बलराम पर राज्य के शासन की ज़िम्मेदारी सौंप कर पांचाली स्वयंवर के लिए आगे निकल पड़ते हैं। महाराज शाल्व के राज्य से होकर वे महाराज चारूदेष्णा के पास पहुँचते हैं। छंदक से भेंट होने के पश्चात चारूदेष्णा द्वारा चेकितान को नजरबंद बनाने की बात का पता चलता है। वास्तव में चारूदेष्णा और उसका पुत्र जयद दुर्योधन के संभावित आक्रमण से भयभीत थे। उन्हें ऐसा लगा कि दुर्योधन ने उन पर आक्रमण कर दिया है। कृष्ण उन्हें आश्वस्त करते हैं। कृष्ण वहाँ से पुष्कर चले जाते हैं। उद्धव से भेंट होने के पश्चात् कौरवों द्वारा चेकितान को पुष्कर वापस दिया जाता है। वहीं आचार्य द्रोण और शकुनि से भी भेंट होती है। अग्रवाण वापस आने पर छंदक कृष्ण को पांचाली स्वयंवर की व्यवस्था की बारिकियों से अवगत कराते है। कृष्ण अतिथियों के शिविर से लेकर पांडवों को स्वयंवर में उपस्थित रहने की सूचना देने की ज़िम्मेदारी छंदक पर सौंपते हैं। जरासंध द्वारा पांचाली हरण की योजना बनाई जाती है जिससे छंदक कृष्ण को अवगत कराते हैं।

बलराम का दल अग्रवाण पहुँचते ही कृष्ण चारूदेष्णा, चेकितान आदि के साथ प्रस्थान करते हैं। पांचाल पहुँचने पर उनका उचित स्वागत नहीं होता। आचार्य सांदीपनि से भेंट होने पर पांचाल नरेश द्रुपद की बदली प्रकृति से परिचित कराते हैं। द्रुपद के मन में यह आशंका निर्माण होती है कि कृष्ण ने योजना बनाकर पांचाली को द्रोण शिष्य के हाथों थामने और द्रुपद के सम्मान का हरण करने के लिए ही पांचाली स्वयंवर की बात चलाई थी। कृष्ण की शिखंडी से भेंट होती है। शिखंडी ने अपने पिता द्रुपद को बहुत हद तक समझा कर कृष्ण से मिलने के लिए राजी किया था। द्रुपद से भेंट होने पर कृष्ण पांचाली स्वयंवर संबंधी विस्तार से चर्चा करते हुए और स्वयंवर के संचालन के लिए आचार्य सांदीपनि को आमंत्रित करने के लिए द्रुपद की अगुवाई में उपस्थित होते हैं। आचार्य सांदीपनि विवाह में उपस्थित होने के लिए राजी हो जाते हैं।

कृष्ण पांचाली से भेंट करके उसे सारी स्थितियों से अवगत कराते हैं। साथ ही शकुनि

की मंशा बताकर उससे मिलने के लिए पांचाली को समझाते हैं। कृष्ण योजना के अनुसार पांचाली-शकुनि भेंट होती है लेकिन शकुनि अपने मनसुबों में कामयाब नहीं हो पाता। स्वयंवर शिविर में कृष्ण की भेंट एकलव्य से हो जाती है। लेकिन कृष्ण उसे उचित न्याय नहीं दे पाते। कृष्ण स्वयं अपने बार में कहते हैं, "आप विश्वास करें, मेरे ऊपर हजारों घड़े पानी पड़ गया। धर्म की दुहाई देनेवाला और धर्म की रक्षा एवं अभ्युदय के लिए स्वयं को समर्पित समझनेवाला मैं एक युवक को सामाजिक न्याय भी नहीं दिला सकता? मेरा अहं कभी इतना धराशाई नहीं हुआ था।"[24]

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि इस खंड में औपन्यासिक कृष्ण के चरित्र का विकास कूटनीति से आगे बढ़ते हुए एक कुशल प्रशासक के रूप में हुआ है। द्वारका के शासक बनने के पश्चात द्वारका का विकास एक व्यापारी केंद्र के रूप में किया। यहाँ अर्थ प्रधान विकास आधुनिक युग में अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है। साथ ही शासन व्यवस्था को अपने आर्थिक विकास के लिए अपनी भौगोलिक स्थितियों को किस प्रकार सूझ-बूझ के साथ प्रयोग करना चाहिए इस ओर भी संकेत मिलता है। आर्थिक विकास के साथ कृष्ण राज्य की सुरक्षा के लिए सामाजिक विकास की ओर भी ध्यान देते हैं जो आधुनिक स्थितियों में बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार कृष्ण एक आदर्श शासक के मिथक बनकर इस खंड में उभरते हैं। कृष्ण कौरवों की विस्तारवादी शासन व्यवस्था का विरोध करते हुए छोटे राज्यों को एकसंघ बनाने की कोशिश करते हैं। यह आधुनिक पाश्चात्य साम्राज्यवादी व्यवस्था का विरोध तथा छोटे देशों को अपनी सुरक्षा के लिए एकसंघ होने की आवश्यकता की ओर इशारा करता है। पांचाल नरेश द्रुपद को द्रोण प्रतिशोध को नष्ट करने की सलाह भी देते हैं, जिससे प्रजा में सुख-शांति कायम रहे। इन प्रसंगों में कृष्ण में युद्ध विरोधी आधुनिक मानवता दिखाई देती है।

[24] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा भाग-4, लाक्षागृह, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.371

5. कृष्ण की आत्मकथा- भाग 5 : खांडवदाह

कृष्ण द्वारा रचे द्रौपदी स्वयंवर में हर प्रमुख प्रतिभागी अपनी ओर से द्रौपदी स्वयंवर में विजयी होने के लिए हर प्रकार का हथकंडा अपना रहा थे, साथ ही दूसरों को प्रतियोगिता से हटाने की कोशिश भी कर रहे थे। शकुनि दुर्योधन के लिए कर्ण को मार्ग से हटाने के लिए छंदक के साथ मिलकर योजना बनाते हैं जिसके तहत वे द्रौपदी को कर्ण से स्वयंवर प्रतियोगिता में सम्मिलित न होने का वचन लेने के लिए कहते हैं लेकिन कर्ण की तेजस्विता से मोहित द्रौपदी ऐसा नहीं कर सकी। कृष्ण कर्ण को हटाने के लिए द्रौपदी को पिता के प्रतिशोध की याद दिलाकर कर्ण के प्रति उसके मन में विद्वेष के बीज उत्पन्न करते हैं। दुर्योधन को हटाने के लिए कृष्ण स्थूणाकर्ण को मोहरा बनाना चाहते हैं लेकिन स्थूणाकर्ण इस प्रकार षड्यंत्र रचने और झूठ बोलने के लिए तैयार नहीं होते। कृष्ण उसे समझाते हुए कहते हैं कि "धर्म कोई मोम नहीं, जो जरा सा झूठ की आँच से गल या सच के हिम से जम जाए। किसी व्यापक सामाजिक हित के लिए यदि हमें झूठ भी बोलना पड़े, तो बोलना चाहिए। इसकी अनुमति हमारा धर्म देता है।"[25] लेकिन स्थूणाकर्ण नहीं माना तो उसका महाराज द्रुपद द्वारा उचित सम्मान करके उसे बिदा किया और उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर कृष्ण राजभवन में यह प्रचारित कर देते हैं कि स्थूणाकर्ण शल्य चिकित्सक के साथ-साथ स्थापत्यकार भी है इसी ने लाक्षागृह का निर्माण किया था और इस षड्यंत्र का निर्माता दुर्योधन था। जरासंध ने द्रौपदी के हरण की योजना बनाई थी जिसके लिए मगध के सैन्य का आगमन हो रहा था लेकिन मध्य रात्रि के प्रहर में कृष्ण जरासंध को अनपेक्षित रूप से प्रभावित करते हैं और आक्रमण न करने की सलाह देते हैं। कृष्ण ने अर्जुन के मार्ग की सारी बाधाएँ दूर कर रखी थी और छंदक पर पांडवों को निश्चित समय पर उपस्थित करने की ज़िम्मेदारी सौंप दी थी।

द्रौपदी के स्वयंवर समारोह में दुर्योधन और कौरव समर्थक सभी राजा हार जाते हैं।

---

[25] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 5, खांडवदाह, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.22

कर्ण धनुष उठाकर उसे प्रत्यंचा भी लगा देते हैं लेकिन कृष्ण नीति के अनुसार द्रौपदी ऐन वक्त पर सूतपुत्र का वरण करने से इनकार कर देती है। इससे एकलव्य व्यवस्था पर सवाल उठाते हुए "यह धनुर्विद्या की स्पर्धा है या जाति की?"[26] प्रश्न पूछता है। कृष्ण कूटनीति अपनाकर इसे द्रौपदी की इच्छा बताते हुए स्वयंवर को आगे बढ़ाते हैं। सारे क्षत्रिय परास्त हो जाने के पश्चात ब्राह्मणों को स्वयंवर में सम्मिलित होने का अवसर दिया जाता है जिसमें ब्राह्मण वेश में आया हुआ अर्जुन सफल हो जाता है। अर्जुन के विजयी होने के पश्चात संघर्ष की स्थिति देखकर कृष्ण द्रौपदी को अर्जुन से माला पहनाने के लिए कहते हैं। अर्जुन-कर्ण और भीम-शाल्व युद्ध में कौरवों की यह आशंका बल लेती है कि ब्राह्मणों के भेस में ये पांडव ही है। स्थितियों को देखते हुए द्रौपदी की तत्काल बिदाई की जाती है। बिना देखे कुंती का द्रौपदी को पांडवों में बाँटकर लेने के लिए कहना एक नई समस्या उत्पन्न कर देता है। कृष्ण पांडवों के जीवित होने का समाचार चारों और फैलाते हैं। पांचाली ऐतिहासिक संदर्भ पाकर पाँच पतियों का वरन करती है, जिससे अर्जुन नाराज़ हो जाता है।

कौरव राजधानी हस्तिनापुर में भी यह समाचार पहुँच जाता है कि पांडव जीवित है। कृष्ण पांडवों की सुरक्षा के लिए एक नीति बनाते हैं उसे छंदक को समझाते हुए कहते हैं कि "छंदक! अब हमें प्रचार तंत्र और तेज करना पड़ेगा कि पांडवों के पास दैवी शक्ति है, अन्यथा लाक्षागृह से सुरक्षित न बच निकलते। अग्नि उन्हें पचा नहीं पाई। देवताओं के आशीर्वाद से ही उन्होंने द्रौपदी को पाया। इतने दिनों जंगल में रहकर उन्होंने तप किया है। देवताओं को प्रसन्न किया है। उन्हीं के आशीर्वाद से वे देवपुत्रों की तरह अपनी राजधानी में आ रहे हैं।"[27] पांडवों के जीवित होने और द्रौपदी स्वयंवर के समाचार से पितामह भीष्म बड़े खुश हुए। महाराज धृतराष्ट्र से सलाह करके विदुर को पांडवों को लाने के लिए भेज दिया। महाराज द्रुपद पांडवों को आधा राज्य देने के लिए तैयार थे। भीम और सुशर्मा की बहन

---

[26] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 5, खांडवदाह, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.56
[27] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 5, खांडवदाह, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.133

बलंधरा में प्रेम के लुकाछिपी का खेल चल रहा था जिससे सुशर्मा नाराज़ था। सुशर्मा को दुर्योधन का बुलावा आने पर वह हस्तिनापुर चला जाता है। महाराज द्रुपद बड़े धूमधाम से सैन्य टुकड़ी के साथ द्रौपदी की बिदाई करते हैं। पहले पड़ाव अग्रवाण राज्य में महाराज चारूदेष्णा के यहाँ करते हैं। वहीं पर हस्तिनापुर से लौटे गुप्तचर उन्हें बताते हैं कि कौरव हस्तिनापुर छोड़कर जा रहे हैं। महाराज धृतराष्ट्र पर युधिष्ठिर को पुन: युवराज न बनाने के लिए दबाव डाल रहे हैं।

हस्तिनापुर में पांडवों का स्वागत सुशर्मा के नेतृत्व में किया जाता है। कौरव इस स्वागत समारोह से अपने आप को दूर रखते हैं। हस्तिनापुर आते ही पांडव प्रपितामही सत्यवती का आशीर्वाद लेने जाते हैं। कृष्ण विदुर के पास ही ठहरते हैं। एक दिन बलंधरा कृष्ण से मिलती है। और अपनी बहन की ओर से निवेदन करती है कि दुर्योधन का युवराज पद बना रहे। दूसरी तरफ शकुनि खांड़व वन में भीष्म, विदुर समेत पांडव पुत्रों के विरूद्ध अभिसार क्रिया करने की योजना बनाते हैं लेकिन कृष्ण उसे सफल नहीं होने देते। हस्तिनापुर के पूर्व महापौर पांडवों के नागरी सत्कार की योजना बनाते हैं लेकिन पितामह इसे राजनीतिक समारोह बनाना चाहते हैं। शकुनि षड्यंत्र के तहत महाराज धृतराष्ट्र के जरिए युधिष्ठिर को राजा बनाने की बात कही और उसी के तहत युधिष्ठिर का राज्यारोहन समारोह आयोजित किया जाता है। लेकिन उसके पूर्व युधिष्ठिर से वचन लिया जाता है कि वे राज्य धृतराष्ट्र के निर्देश पर चलाएँगे। दुर्योधन भी कृष्ण को मारने की योजना बना चुका था जिसके अनुसार हस्तिनापुर के महामल निजबल के अखाड़े में बुलाकर मल्लों द्वारा हमला करने का प्रयास करता है लेकिन कृष्ण को इसकी भनक पहले ही लग चुकी थी जिससे दुर्योधन की सारी योजना धरी की धरी रह गई। कृष्ण बलराम समेत निजबल के अखाड़े में पहुँचते हैं। दुर्योधन, भीम उनका स्वागत करते हैं। कृष्ण मल्लों को संबोधित करते हुए दुर्योधन के षड्यंत्र का खुलासा करते हैं।

युधिष्ठिर के राज्यारोहन का समारोह आयोजित किया जाता है जिसमें सिर्फ कौरव

समर्थक राजाओं को ही आमंत्रित किया जाता है। हस्तिनापुर की जनता में इस समारोह को लेकर काफी उत्साह था। चंद्रसेन ने भी पांडवों के नागरी सत्कार की योजना इसी समारोह में बनाई थी। इस समारोह में वह सक्रिय योगदान दे रहा था लेकिन कौरव और खासकर कर्ण को उसका योगदान अच्छा नहीं लग रहा था। बैठक व्यवस्था में परिवर्तन करके कर्ण ने द्रौपदी को मंच से हटाने की व्यवस्था बनाई लेकिन उसकी योजना सफल नहीं हो पाई। कर्ण पर टिप्पणी करते हुए चंद्रसेन कहते हैं कि, "एक स्थिति ऐसी आती है, जब प्रतिशोध को अपनी आँखों में ही धूल झोंकने में शांति मिलती है।"[28] राज्यारोहन समारोह आरंभ हो जाता है। पितामह पांडू का राज्य पांडूपुत्रों को सौंपने की बात करते हैं जिससे जनता उत्साहित हो जाती है। महाराज धृतराष्ट्र ने अपना पक्ष रखते हुए युधिष्ठिर को राजा और दुर्योधन को युवराज बने रहने की बात कही। महाराज धृतराष्ट्र ने कूटनीति के तहत युधिष्ठिर के मुख से ही यह सार्वजनिक कर दिया कि वे महाराज धृतराष्ट्र के निर्देश पर ही शासन चलाएँगे। जिससे शकुनि अत्यंत खुश हुआ। फिर शकुनि ने व्यावहारिकता की बाते कहकर महाराज धृतराष्ट्र से एक म्यान में दो तलवारे कैसे रखेंगे? यह प्रश्न पूछा जिसपर उत्तर देते हुए उन्होंने पूर्व कूटनीति के अनुसार पांडवों को खांडव वन देने की बात कही और अपनी इच्छानुसार राजधानी बनाने के लिए कहा और राज्य का बँटवारा कर दिया। हस्तिनापुर कौरवों का हो गया। पांडवों पर अन्याय होता देख कृष्ण ने बागड़ोर संभाली। महाराज धृतराष्ट्र को उद्देशित और सभा को संबोधित करते हुए कृष्ण ने कहा, "पर राजधानी बना लेने मात्र से कोई राज्य नहीं बनता। राजधानी तो राज्य के सात अंगों में मात्र एक है। इस ओर भी महाराज को सोचना चाहिए। जब उन्होंने राजधानी बाँटी तो राज्य के छह अंगों का भी उन्हें बँटवारा कर देना चाहिए। आधा कोश भी पांडवों को देना चाहिए और आधी प्रजा भी। जब मैं मथुरा से द्वारका की ओर गया था, तब अपनी प्रजा लेता गया था।"[29] कृष्ण के

---

[28] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 5, खांडवदाह, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.215
[29] मनु शर्मा, 'कृष्ण की आत्मकथा-भाग 5, खांडवदाह, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 222

इस संबोधन ने कौरवों का पांडवों को फिर से जंगल में भेजने का षड्यंत्र नेस्तनाबूद कर दिया। इसी समारोह में मथुरा से आया लोहिता ने कृष्ण को खुद बनाए हुए अभिमंत्रित पाँच अग्निबाण भेंट दिए।

बँटवारे के बाद पांडवों ने राजमहल में रहना उचित नहीं समझा और वे राजमहल छोड़कर प्रपितामही के पास आ गए। एक दिन महर्षि नारद ने आकर पांडवों को सुंद-उपसुंद और तिलोत्तमा की कथा सुनाई लेकिन द्रौपदी ने उन्हें आश्वस्त किया। कृष्ण ने उद्धव, बलराम, सात्यकि और छंदक से चर्चा करके अपने कोश का पाँचवाँ हिस्सा पांडवों को सहयोग के रूप में देने का निश्चय किया। कृष्ण ने पांडवों को जनता का समर्थन प्राप्त हो इसलिए चंद्रसेन से कहकर आभार यात्रा का आयोजन करवाया। चंद्रसेन की भी पांडवों को नागरी सत्कार की इच्छा राज्यारोहन समारोह में पूर्ण नहीं हो पाई थी। चंद्रसेन ने आभार यात्रा की भव्य तैयारी शुरू की। इस आभार यात्रा में प्रजा आत्मीयता से उमड़ पड़ी। लोगों के नियंत्रण के लिए की व्यवस्था पस्त हो चुकी थी। युधिष्ठिर ने स्नेह भरा भाषण दिया। इसी सभा में कृष्ण ने विरजा को लाक्षागृह की अंतिम चिंगारी के रूप में प्रस्तुत किया जिससे लोग कौरवों पर षड्यंत्र रचने के लिए छी-थू करने लगे। हस्तिनापुर की प्रजा पांडव समर्थक हो गई थी। इसी कारण महाराज धृतराष्ट्र भयभीत हो गए। उन्होंने गुप्त बैठक बुलाई जिसमें गांधारी, विदुर, पितामह भीष्म, शकुनि, दुर्योधन और कुछ अमात्य उपस्थित थे। जन भावना का आदर करते हुए पांडवों के लिए खांडवप्रस्थ के पुराने राजभवन का जीर्णोद्धार करने की योजना बनाई।

कौरव-पांडव बँटवारे से सभी निकटवर्तीय परेशान थे। आचार्य द्रोण ने अपनी व्यथा कृष्ण के सम्मुख प्रकट करते हुए कहा, "उस आचार्य की बड़ी विचित्र स्थिति होती है, द्वारकाधिश जो अपनी विद्या स्वर्णखंडों पर बेच देता है, जो राजाश्रित होकर वेतनभोगी हो जाता है। अब मैं समाज का नहीं रहा, हस्तिनापुर का हो गया हूँ। अब आश्रम की सहजता और पवित्रता का स्थान राजभवन की विलासिता ने ले लिया है। चाकर की लाचारी से

विवश हूँ।”[30] पितामह भीष्म ने भी अपनी हस्तिनापुर के प्रति वचनबद्धता की परेशानी प्रकट की। खांडवप्रस्थ के मरम्मत के बाद पांडव अपनी प्रजा के साथ खांडवप्रस्थ चले गए। उसके पूर्व ही महाराज द्रुपद वहाँ पहुँच चुके थे। उन्होंने अपनी निगरानी में उसकी सुरक्षितता की परीक्षा की। एक दिन दिव्य महर्षि का आगमन हुआ उन्हीं की सूचना के अनुसार और सहयोग से खांडववन जलाया गया और नए नगर निर्माण का काम महान शिल्पी मय को सौंपा गया। इंद्रदेव ने भी पूर्ण सहयोग देते हुए मय से कहा कि नगर निर्माण में जिस किसी वस्तु की आवश्यकता हो वह मुझसे प्राप्त करे। अब खांडवप्रस्थ इंद्रप्रस्थ बनने जा रहा था।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि इस खंड में कृष्ण चरित्र का विकास सहायक, मित्र सखा, के रूप में अधिक हुआ है। कृष्ण पांडवों की सहायता करके अपनी रिश्तेदारी तथा अर्जुन को द्रौपदी स्वयंवर का भेद बताकर अपनी मित्रता निभाते हैं। द्रौपदी स्वयंवर में अगुवाई करके द्रौपदी के प्रति सखाभाव भी निभाते हैं। राज्य बँटवारे में पांडवों पर हो रहे अन्याय को देखते हुए हस्तक्षेप करके समान बँटवारे पर जोर देते हैं। यहाँ कृष्ण का न्यायी पक्ष उभरकर सामने आता है। खांडव वन जलाकर वहाँ इंद्रप्रस्थ के निर्माण में सहयोग प्रदान करते हैं। यहाँ कृष्ण आधुनिक विकासक (Devoloper) के मिथक के रूप में उभरते हैं। कौरव-पांडवों के बीच का संघर्ष आधुनिक पारिवारिक कलह का मिथक बनकर उभरता है तथा कौरव-पांडवों के बीच हुआ बँटवारा आधुनिक पारिवारिक बँटवारे का मिथक तथा आद्यरूप है।

6. ‘कृष्ण की आत्मकथा’ भाग-6 : राजसूय यज्ञ

इंद्रप्रस्थ (खांडवप्रस्थ) स्थापना की नींव रखकर कृष्ण द्वारका लौटने के पूर्व हस्तिनापुर के लोगों से मिलने के लिए चले जाते हैं। वचनानुसार प्रपितामही सत्यवती से भेंट करके वे आगे प्रस्थान करते हैं। द्वारका के पूर्व वे यादव राज सत्राजित के यहाँ रूकते हैं लेकिन यहाँ उन्हें सम्मान जनक आतिथ्य प्राप्त नहीं होता। साथ ही सैनिकों के खाने-पीने की

---

[30] मनु शर्मा, ‘कृष्ण की आत्मकथा-भाग 5, खांडवदाह, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.263

व्यवस्था भी नहीं की जाती। उल्टा अंधेरी रात्रि में सत्राजित के भाई प्रसेनजित चोरी-छिपे कृष्ण के मुकुट का एक मणि निकालकर ले जाता है। आनंद की बात इतनी ही थी कि सत्यभामा-कृष्ण की भेंट हो जाती है। उसके बाद कृष्ण सत्यक चाचा के पास ठहरते हैं। सत्यक चाचा को सत्राजित के नाराज़गी का कारण बताते हुए कृष्ण कहते हैं कि सत्राजित को अपनी सम्यतक मणि की बड़ी चिंता है और एक बार मैंने नाना जी के स्वास्थ्य के लिए उन्हीं के कहने पर सत्राजित से सत्यंतक मणि माँगी थी लेकिन उन्होंने देने से इनकार कर दिया था। तबसे वे उसी बात को लेकर नाराज़ हैं। कृष्ण जब द्वारका पहुँचते तो रूक्मिणी द्वारा पुत्र प्राप्ति की सूचना पाते हैं। कृष्ण के अभाव में द्वारका में अराजकता फैली हुई थी। साथ ही राज्य की आर्थिक स्थिति भी चरमराई थी। अमात्य मंडल ने यहाँ तक सूचना दी थी कि सत्राजित के स्वयं द्वारकाधीश बनने की संभावनाओं की जनता में मुनादी दी थी और लोगों को कर ना देने की सूचना भी प्रसारित करवा दी थी। कृष्ण ने अमात्य मंडल को यह बताया कि सत्राजित की मानसिकता विकृत हो गई है। साथ ही अमात्य मंडल को सूचना देते हैं कि, "प्रजा में शीघ्र मुनादी करा दी जाए कि वह शेष कर एक पक्ष में जमा करें। यदि वे किसी कारणवश न जमा कर पाएँ तो अपनी असमर्थता की सूचना देते हुए यह भी बताने का कष्ट करें कि वे कब तक जमा कर सकेंगे।"[31] कृष्ण द्वारका की प्रजाहितैषी व्यवस्था करने के बाद आश्रम की व्यवस्था पर ध्यान देते हैं क्योंकि कृष्ण का मानना था कि, "किसी राज्य का वर्तमान उसकी सत्ता में और भविष्य उसके आश्रमों में पलता है।"[32] कृष्ण गर्गाचार्य से भी मिलते हैं।

सत्राजित अपने राज कर्मचारी कुशाग्र को द्वारका में कृष्ण विरोधी मुनादी देने के लिए कहता है। मुनादी के अनुसार कृष्ण चोर हैं और उसने सत्राजित की सम्यंतक मणि चुराई है। द्वारका के सैनिक उसे कृष्ण के पास जब ले आते हैं तब कुशाग्र के मुँह पर पट्टी बँधी थी।

---

[31] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 6, राजसूय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 40
[32] वहीं, पृ.40

उसका कारण बताते हुए सैनिक ने आपत्तिजनक घोषणाएँ करने की बात कही। कृष्ण मामला दंडाधिकारी के पास ले जाने और उचित आरोपपत्र के साथ अपराहन में न्यायपीठ पर बैठने के पश्चात उपस्थित करने के लिए कहा। जब कृष्ण के सम्मुख पुन: उपस्थित किया तो आरोप सुनकर कृष्ण ने कुशाग्र को भी बोलने का मौका दिया। कुशाग्र ने यह तय माना था कि उसकी मृत्यु निश्चित है लेकिन कृष्ण ने राज्य कर्मचारी की पीड़ा समझाते हुए अर्ध पक्ष के कठोर कारावास की सजा दी जो कुशाग्र की आशा के विपरीत थी। कृष्ण जब सत्राजित से मिलने के लिए चले तब उन्होंने अपने साथ कुशाग्र को भी लिया। कृष्ण के साथ कुशाग्र को सकुशल देखकर सत्राजित आग-बबुला हो उठा। उसने कृष्ण को इंद्रजालिक कहते हुए सम्यंतक मणि चुराने का आरोप लगाया। कृष्ण ने जब प्रसेन को उपस्थिति कराने की बात की तब उसके अपहरण का आरोप भी कृष्ण पर ही लगाया। कृष्ण उसके झूठे आरोपों से व्यथित होकर सम्यंतक मणि और प्रसेन प्राप्त न होने पर आत्मदाह करने का संकल्प करते हैं, और उन दोनों की तलाश में निकल पड़ते हैं। जंगल के रास्ते पर रथ उपयुक्त न पाकर कुशाग्र की बात मानते हुए उसी के अश्व पर सवार होकर महिष्मती का राजा कृतवर्मन जो सत्राजिता का साढू भी था उसके पास चले जाते। कृतवर्मन उसे जामवंती और प्रसेन की प्रेमकथा सुनाते हैं, जिससे प्रसेन की तलाश में वे रक्ताक्ष के साथ जांबवन राज्य की ओर निकलते हैं। पादप ग्राम के ग्रामीण की मदद से वे पहाड़ी रास्ते से जांबवन की ओर बढ़ते हैं। जंगल के रास्ते में उन्हें प्रसेनजीत की तलवार आदिवासियों के पास प्राप्त होती है। तलवार के पश्चात प्रसेनजीत की खोज करने पर प्रसेनजीत की अस्थियों के टुकड़े मिलते हैं, जिसे गिरनारी सिंह ने अपना शिकार बना लिया था। प्रसेनजित की मृत्यु की सारी कथा तथा सम्यंतक मणि के बारे में जाम्बवंती बताती है। कृष्ण जांबवंती के कहने पर महाराज जांबवंत से मिलते हैं। कृष्ण सम्यंतक मणि माँगते हैं लेकिन जांबवंत स्पष्ट करते हैं, कि यहाँ न तो भीख माँगी जाती है और न दी जाती है। सम्यंतक मणि के लिए तुम्हें युद्ध करना पड़ेगा। कृष्ण ने कुछ दिनों तक युद्ध जारी रखा। कृष्ण जानते थे कि जांबवंती समाज पर त्रेता

युग के राम का गहरा प्रभाव है इसलिए कृष्ण ने ''जांबवंत' को केवल श्रीराम की याद दिलाने के लिए त्रेता का नाम लिया था क्योंकि किसी की दृष्टि बदलने के लिए उसकी मानसिकता बदलना अनिवार्य है। और सचमुच मेरी यह युक्ति कारगर हुई। आज युद्ध के आरंभ से ही मैं जांबवंत को द्वारकाधीश कृष्ण नहीं अयोध्या का वनवासी राम दिखाई देने लगा था।''[33] जांबवंत ने युद्ध रोककर कृष्ण का विवाह जांबवंती से कराके सम्यंतक मणि के साथ उनकी विदाई की।

सत्राजित के नगर में पहुँचते ही कुशाग्र को सभा के मुनादी लगाने के लिए कहा जिसका सत्राजित पर गहरा दबाव पड़ा। कृष्ण ने सभा में सम्यंतक मणि सत्राजित को लौटाई और प्रसेनजित की वस्तुएँ लौटाते हुए उसकी मृत्यु की सूचना दी। सत्राजित के अपने ही आरोप झूठे साबित होने और जनता की उपस्थिति से ऐसा दब गया कि उसने अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह कृष्ण के साथ रचाकर उसको सम्यंतक मणि लौटा दी। कृष्ण विजयी मुद्रा में जांबवती, सत्यभामा और सम्यंतक मणि के साथ द्वारका लौट आए। कृष्ण की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर बलराम की चाटुकारिता करके दुर्योधन ने उन्हें हस्तिनापुर के पक्ष में कर लिया था। साथ ही बलराम से सुभद्रा के साथ विवाह रचाने का वचन भी लिया था जबकि सुभद्रा दुर्योधन को बिल्कुल भी नहीं चाहती थी। कृष्ण ने बलराम को समझाने की कोशिश की लेकिन वे नहीं माने। कृष्ण ने सोचा ''हठ तो ज्वाला है, जिसकी समिधा बनने से अच्छा उसे स्वयं जलने के लिए छोड़ दिया जाए। हर आग की नियति उसका बुझना ही है। प्रत्येक अग्नि बुझाने पर भभकती है, तब क्यों नहीं उसे स्वयं जलकर बुझने के लिए छोड़ दिया जाए।''[34]

अर्जुन के द्वारका आने पर भी बलराम ने अर्जुन की स्थिति से अवगत होने पर भी शिष्टता का व्यवहार नहीं किया। सुभद्रा की स्थिति देखते हुए कृष्ण ने सभुद्रा-अर्जुन के

---

[33] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 6, राजसूय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.94

[34] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 6, राजसूय, (प्रभात प्रकाशन-स्थिल्ली, संस्करण 2012), पृ.126

विवाह की योजना बनाई और अर्जुन को सूचित करते हुए कहा, "जितनी जल्दी हो, तुम द्वारका छोड़ दो और रैवतक पर्वत पर सोमशिव के मंदिर में चले जाओ। उस मंदिर में तुम्हें यति संन्यासी के वेश में रहना पड़ेगा और चांद्रयान व्रत करना पड़ेगा।"[35] फिर बलराम के साथ मिलकर रैवतक पर्वत पर वसंत उत्सव का आयोजन किया जिसमें सभी यादवों को आमंत्रित किया। जहाँ पूर्व योजना के अनुसार अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया। कृष्ण की कूटनीति का पता चलते ही बलराम कृष्ण से नाराज़ हो गए। कुछ दिनों पश्चात सुभद्रा का पत्र पाकर बलराम का तनाव ढीला पड़ा और सुभद्रा को अर्जुन समेत वापस बुलाकर उनका यथोचित सम्मान किया।

एक दिन प्राग्ज्योतिषपुर के त्वष्टा ऋषि का आगमन होता है। उन्होंने नरकासूर के आतंक की और अपनी पुत्री कशेरू के अपहरण की कहानी सुनाई। उनकी पीड़ा दूर करने के लिए कृष्ण इंद्र के वाहन गरूड़ पर पत्नी सत्यभामा, छंदक और रक्ताक्ष के साथ प्राग्ज्योतिषपुर की राजधानी मणलूर चले गए। कृष्ण ने सत्यभामा को सोलह सहस्त्र बंदी नारियों का मनोबल बढ़ाने अंतपूर भेज दिया। छंदक के जरिए नरकासूर की पत्नी भूदेवी और पुत्र भगदत्त का मन परिवर्तित किया। और स्वयं नरकासूर का अंत कर दिया। सोलह सहस्त्र नारियों को मुक्त किया गया। प्राग्ज्योतिषपुर की सत्ता प्रजातांत्रिक बनाने की व्यवस्था की। नरकासूर के निर्माणमूलक स्थितियों की चर्चा करते हुए कृष्ण कहते हैं, "नरकासुर एक दिन में नहीं पैदा होते। उनके निर्माण में युग लग जाते हैं। परिस्थितियाँ, देवताओं के आशीर्वाद और वरदान ऐसे असुरों के निर्माण में सहायक होते ही हैं, साथ ही त्वष्टा जैसे आचार्यों का अत्याचार सहते जीवित रहने का मोह भी कम सहायक नहीं होता। आप जानते हैं, मैं आप की सेवा में कब आया? जब आचार्य त्वष्टा की अपनी बेटी का अपहरण हुआ। देश की जब तक इतनी बेटियों का अपहरण हुआ तब तक आचार्य कुल पर जीवन की मोहनिद्रा छाई रही। वह जरा भी विचलित नहीं हुआ। यह स्वार्थपरता समाज में तो हो

[35] वहीं, पृ.143

सकती है पर जब आश्रमों को यह ग्रसती है तब नरकासूर जैसे राक्षसों का जन्म होता है।''[36]

नरकासुर वध का समाचार पूरे आर्यावर्त में प्रसारित होता है। वहाँ से लौटते समय काशी में सुशर्मा से मिलने पर जरासंध के एक सौ एक नरेश बलि की योजना का और उसके आतंक का अनुभव कृष्ण को होता है। द्वारका में कृष्ण का भव्य स्वागत होता है। पांडवों के निमंत्रण पर वे इंद्रप्रस्थ पहुँचते हैं। नए महल की भव्यता को देखकर प्रभावित हो जाते हैं। साथ ही पांडवों के आमंत्रण पर कौरवों के आने और द्रौपदी द्वारा दुर्योधन के अपमान की खबर सुनकर चिंतित हो जाते हैं। पांडव महाराज पांडू की इच्छा के अनुसार राजसूय यज्ञ करने की सोच रहे थे। कृष्ण ने पांडवों को सलाह दी कि वे कौरवों को अपने पक्ष में करने के लिए हस्तिनापुर जाकर उनसे चर्चा करें। कृष्ण अपने साथ भीम और अर्जुन को लेकर जरासंध का आतंक समाप्त करने गिरीव्रज चले जाते हैं। जरांसध और भीम में मल्लयुद्ध होता है जिसमें जरासंध मारा जाता है। कृष्ण नरेश बलि के लिए बंदी बनाए नब्बे राजाओं को मुक्त कर देते हैं। साथ ही राजसूय यज्ञ का आमंत्रण भी देते हैं। कृष्ण जब काशी पहुँचते हैं तो अपने आतिथ्य में बढ़ोतरी पाते हैं। इस स्थिति का वर्णन करते हुए कृष्ण बताते है, "यों तो मैंने अनेक अवसरों पर जाना था कि व्यक्ति की नहीं उसकी शक्ति और सामर्थ्य की पूजा होती है, पर आज इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा था। अमात्य मंडल के लोग मुझे पदत्राण पहनाने के लिए उपस्थिति थे।"[37] काशी से बलंधरा, भीम वेदव्यास समेत कापिल्य राज द्रुपद के पास पहुँचकर द्रौपदी द्वारा दुर्योधन के अपमान की बात बताते हैं, जिससे द्रुपद चिंतित होकर प्रतिक्रिया देते हुए कहते हैं, "पर इतना समझो माधव, इसमें बचपन भी है, अहं भी है। बचपन के हाथ में अहं बंदर के हाथ में असि है, जिससे वह दूसरों की कम अपनी हानि अधिक करता है।"[38]

हस्तिनापुर के समर्थन से और भीम द्वारा जरासंध की मृत्यु से पांडवों का मनोबल बढ़

---

[36] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 6, राजसूय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 200-201

[37] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 6, राजसूय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.244

[38] वहीं, पृ. 252

गया था। सभी राजाओं को निमंत्रण देने और दिग्विजय फहराने युधिष्ठिर के चारों भाई चार दिशाओं में चले गए। नकुल पश्चिम की ओर था जो कृष्ण को निमंत्रित करने और मिलने आया। नकुल ने बताया अपने समझे जाने वालों ने ही विरोध किया। तब कृष्ण नकुल को समझाते हैं कि, "यह सारा विरोध ईर्ष्याजन्य है और जानते हो, नकुल ईर्ष्या का विषवृक्ष अपनत्व की धरती पर ही उगता है।"[39] चारों भाई पूरे आर्यावर्त को निमंत्रित करके लौटे। कृष्ण के नेतृत्व में राजसूय यज्ञ संबंधी कार्य पूर्ति के लिए एक योजना बनाई। कौरवों को कौन से कार्य सौंपे जाए इस संबंधी चर्चा हुई, सभी महाराजाओं को राजसूय यज्ञ में आमंत्रित करने की योजना बनाई। राजसूय यज्ञ और अतिथियों की व्यवस्था के लिए गए नगर का निर्माण कार्य आरंभ हुआ और राजसूय यज्ञ संबंधी सभी कार्य बाँटे गए। कौरवों के आगमन पर उन्हें सम्मान जनक कार्य बाँटे गए जिससे वे बेहद संतुष्ट हुए। सभी निमंत्रित राजाओं का आगमन हुआ। एकलव्य और कर्ण भी उपस्थित हो गए। अंत में कृष्ण के विरोधक शिशुपाल, पौंड्रक वासुदेव, दंतवक्रा आदि भी उपस्थिति हो गए। भीम द्वारा शिशुपाल की कृष्ण को मारने की योजना का कृष्ण को पता चल जाता है। कृष्ण यज्ञ दिवस पर महसूस करते हैं कि शिशुपाल कृष्ण से उलझने के लिए उचित अवसर ढूँढता है। पितामह भीष्म द्वारा अग्रपूजा के लिए कृष्ण का नाम लेते ही वह शिशुपाल आग-बबूला हो उठता है। कृष्ण की बुराईयाँ गिनाता है। शिशुपाल पितामह भीष्म को भी भला बुरा कहता है। अंत में कृष्ण अपने सुदर्शन चक्र से उसका वध कर देते हैं। शिशुपाल के चिता की ज्वाला को देखते हुए कृष्ण महसूस करते हैं कि क्रोध की ज्वाला ने शिशुपाल का अंत कर दिया। उनके चिंतन में विचार उभरते हैं कि, "धीरे-धीरे चिता की ज्वाला भी शांत होने लगी। केवल धधकते अंगारे रह गए-और फिर वे स्वयं भी राख होने लगे। मैं ध्यानाव्यस्थित उन्हें देखता रहा। जो अग्नि दूसरों को जलाने की क्षमता रखती है, उसका भी अंतिम परिणाम जलकर

---

[39] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 6, राजसूय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 273

राख होना ही है। अंत में शिशुपाल भी राख हो गया।"[40] राजसूय यज्ञ संपन्न भी हुआ।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि इस खंड में कृष्ण चरित्र की मानवता अधिक विकसित हुई है। कुशाग्र के अपराध में राज कर्मचारी की परवशता देखते हुए मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाते हैं। त्वष्टा ऋषि के आवाहन पर सोलह सहस्त्र नारियों को मुक्त करने के लिए प्राज्योतिषपुर चले जाते हैं। नरकासूर को मारकर सभी नारियों को मुक्त करके वहाँ की व्यवस्था में सुधार लाते हैं ताकि फिर किसी नरकासुर का निर्माण ना हो। साथ ही उन सभी नारियों को अपनाकर उन्हें सुरक्षा भी प्रदान करते हैं। जरासंध को भीम द्वारा मारकर बंदी राजाओं को मुक्त कराते हैं। इन सभी प्रसंगों में कृष्ण जीवन में विश्वास व आस्था रखने वाले मानवतावादियों के मिथक बनकर उभरते हैं। अर्जुन की सुभद्राहरण में सहायता करके कृष्ण आधुनिक नारी विद्रोह को मदद करनेवाले समाज सुधारक के रूप में अपनी प्रासंगिकता बनाए रखते हैं। पांडवों के राजसूय यज्ञ में सर्वथा मदद कर अपनी मित्रता निभाते हैं तथा शिशुपाल का वध करके उसके अनाचार को दंडित कर न्याय के पक्ष को महत्ता प्रदान करते हैं। इस प्रकार इस खंड में कृष्ण की मानवीय संवेदनाओं और कर्तव्य बोध के दर्शन होते हैं।

7. 'कृष्ण की आत्मकथा' भाग-7 : संघर्ष :

राजसूय यज्ञ की संपन्नता के साथ शिशुपाल के वध से अनिष्ठता का वातावरण तैयार हो गया। साथ ही वेदव्यास की भविष्यवाणी से और संभाव्य विपत्तियों से युधिष्ठिर चिंतित हो गए। युधिष्ठिर जब अपनी चिंताओं को कृष्ण के साथ साझा करते हैं तो कृष्ण उन्हें समझाते हैं, "जब देखिए तब आप सन्यासी होने की बात शुरू कर देते हैं। यह पलायनवादी प्रकृति एक क्षत्रिय को शोभा नहीं देती। जीवन से भागिए नहीं, जीवन को भोगिए। आप विपत्ति से जितना मुँह छिपाएँगे, विपत्ति उतनी ही आपके सामने खड़ी दिखेगी।"[41] कृष्ण की बातों से महाराज युधिष्ठिर आश्वस्त तो हो जाते हैं लेकिन उनके मन में भविष्यकालीन

---

[40] वहीं, पृ.308

[41] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 7 संघर्ष, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ.9

चिंताओं से एक भय बना रहता है।

रात्रि के प्रहर में एक अज्ञात दूत कृष्ण के पिता के अपहरण की सूचना देकर चला जाता है जिससे कृष्ण के मन में शाल्व के षड्यंत्र के प्रति शंका उपस्थित होती है। अपहरण की सूचना से कृष्ण, बलराम द्वारका के लिए निकल पड़ते हैं, उनके साथ पांडव अर्जुन को भी भेज देते हैं। रास्ते में वे पुष्कर राजा चेकितान के पास रूकने की योजना बनाते हैं। पुष्कर के राजा चेकितान को भी वही सूचना मिली थी जिससे वे पहले ही द्वारका की ओर प्रस्थान कर चुके थे। कृष्ण अपनी पूर्व योजना के अनुसार राजभवन में विश्राम करते हैं। तथा पुष्कर के महामात्य को अफ़वाहों के प्रति सावधान करते हैं। कृष्ण सजग हो जाते हैं कि यह शाल्व की यादव राजाओं को भयभीत करने की योजना है। पुष्कर में ही कृष्ण को पिता वासुदेव के मार्तिकावत राजा शाल्व के यहाँ बंदी होने की सूचना प्राप्त होती है। मार्गक्रमण करते हुए कृष्ण सत्राजित के राज्य में पहुँचते हैं। सत्राजित को भी वसुदेव के अपहरण की सूचना अज्ञात दूत से प्राप्त हुई थी। इसलिए वे भी द्वारका प्रस्थान कर चुके थे। कृष्ण और आगे बढ़ते हुए सात्यकि के पास पहुँचते है तो वो भी उसी सूचना के आधार पर द्वारका से निकल गया था। अंत में कृष्ण बलराम और अर्जुन के साथ द्वारका पहुँच जाते हैं।

द्वारका पहुँचते ही शाल्व द्वारा द्वारका पर आक्रमण की योजना, वसुदेव को बंदी बनाना, प्रद्युम्न को युद्ध में घायल करना, रेवती भाभी द्वारा शाल्व के साथ युद्ध करके प्रद्युम्न को छुड़ा लाना आदि बातों की जानकारी प्राप्त होती है। वसुदेव भी अपनी नैतिकता तथा बौद्धिक कौशल से शाल्व की बंदी से ससम्मान वापस आते हैं। वास्तव में शाल्व ने निश्चय किया था कि वह सभी यादवों का समूल नाश करेगा और इसलिए उसने यादवों को भयभीत करने तथा द्वारका को एकाकी बनाने की योजना बनाई थी लेकिन उसकी योजना उल्टी पड़ गई और सारे यादव द्वारका में एक हो गए। सभी यादवों ने योजना बनाकर रात्रि के प्रहर में मार्तिकावत्त पर आक्रमण करके शाल्व को बंदी बनाया। इतना ही नहीं कृष्ण की अनिच्छा के बावजूद द्वारका नगर में उसे घुमाया तथा उसे मृत्युदंड देने का निर्णय भी यादवों

ने ले लिया। सारे यादवों में और द्वारका के नागरिकों में शाल्व के बंदी होने पर एक उन्माद का वातावरण बन गया था। इसपर टिप्पणी करते हुए कृष्ण कहते हैं कि, "किसी के उन्माद पर मेरा कोई अधिकार नहीं पर उसका अपना तो अधिकार है। लोगों को अपने उन्माद को स्वयं नियंत्रित करना चाहिए, क्योंकि उन्माद मस्तिष्क की विकृत अवस्था है। उससे व्यक्ति अपनी ही हानि कर सकता है।"[42] मृत्युदंड के समय शाल्व का वसुदेव से मिलना, न्याय, नियति की बातें करना, बंदी वसुदेव को ससम्मान छोड़ने की बात करना जिससे शाल्व को भी ससम्मान मुक्त किया जाता है।

एक दिन कृष्ण को प्रतिहारी भिखारी के रूप में एक मित्र की उपस्थिति की सूचना देते हैं। कृष्ण प्रतिहारी को समझाते हैं कि, "मनुष्य वेशभूषा से नहीं वरन् अपनी अतृप्त इच्छा से भिखारी होता है।"[43] जब कृष्ण-सुदामा भेंट होती है तो कृष्ण सुदामा की खूब आवभगत करते हैं, सेवा करते हुए उसके द्वारा लाया हुआ धान का चिवड़ा बड़े चाव से खाते हैं। मित्र सुदामा के नाम से 'सुदामापुर' ग्राम का निर्माण करते हैं। सुदामा कृष्ण द्वारा प्रदान किए गए राजसी जीवन को न स्वीकारने और स्वयं के तपस्वी ब्राह्मण होने की बात करते हैं तब कृष्ण समझाते हैं, "तपस्या जीवन नहीं और न वह साध्य है। वह तो साधन है जीवन की पूर्णता का।"[44] कृष्ण मित्र सुदामा की गरीबी दूर करने के लिए उसे सुदामापुर ग्राम का राजा बनाकर विदा करते हैं और यह सारी क्रियाएँ वे गुप्त रूप से करते हैं ताकि मित्र सुदामा को दान ग्रहण करने में संकोच न हो।

कृष्ण योगसिद्धावस्था में द्रौपदी के चीर हरण में उसकी लज्जा रक्षण करते हैं। साथ ही तबसे वे पांडवों की स्थिति को लेकर व्याकुल बने रहते हैं। उन्होंने अमात्य सुव्रत को पांडवों की स्थिति जानने के लिए भेजा। एक दिन अचानक कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न गायब हो जाता है। कुछ दिनों पश्चात प्रद्युम्न अपहरणकर्ता राजा शंबर को मारकर उसकी पत्नी मायावती से

[42] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 7 संघर्ष, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ. 43-44
[43] वहीं, पृ. 51
[44] वहीं, पृ. 64

विवाह करके लौटता है। रूक्मिणी अपने पुत्र की करतूत से बेहद नाराज़ होती है। कृष्ण उसे प्रद्युम्न के पूर्व जन्म (रति-कामदेव) की बातें सुनाकर समझाते हैं। कृष्ण स्वयं मायावती से मिलने जाते हैं और प्रद्युम्न को वहीं छोड़कर वापस लौटते हैं। छंदक भेंट होने के पश्चात वे पांडवों पर शकुनि द्वारा द्युत में किए गए छल, द्रौपदी चीरहरण, इंद्रप्रस्थ को हथियाने बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास से अवगत होते हैं। छंदक नकुल का मिलने के लिए आने और प्रद्योत वन में रूकने की बात बताते हैं। नकुल भेंट के पश्चात कृष्ण काम्यक वन में पांडवों से मिलने चले जाते हैं। पांडवों में आपसी तालमेल न देखकर पांडवों को समझाते हैं कि, "अब तो एकजुट रहना आपका पहला धर्म है। यदि आपके विरोधी सुनेंगे कि आप आपस में ही लड़ रहे हैं, तब तो जो खुशी वे तेरह वर्ष बाद मनाने की कल्पना कर रहे हैं, उसे आज ही मनाने लगेंगे। आप स्वयं को आज से ही पराजय के मुँह में धकेल देंगे।"[45] साथ ही उन्हें पूर्ण रूप से आरण्यक जीवन बिताने की सलाह देते हैं।

द्वारका लौटने पर एक दिन गुप्तचर दुर्योधन और कर्ण के पांडवों के विरूद्ध रचे षड्यंत्र की सूचना देते हैं। जिसके तहत दुर्योधन दुर्वास ऋषि की सेवा करके उन्हें पांडवों की परीक्षा लेने और शापित करने के लिए वन में भेज देते हैं। सूचना मिलते ही कृष्ण तुरंत पांडवों की रक्षा करने के लिए पहुँच जाते हैं। द्रौपदी द्वारा उन्हें दुर्वासा ऋषि के आगमन की सूचना मिलती है। दुर्वासा ऋषि अपने साथ अन्यान्य शिष्यगण लेकर आ रहे थे जबकि पांडवों के पास भोजन की बिल्कुल भी व्यवस्था नहीं थी। कृष्ण अपने बुद्धिचातुर्य से दुर्वासा के छल का भंडाफोड़ कर देते हैं जिससे पांडव दुर्वासा ऋषि द्वारा शापग्रस्त होने से बच जाते हैं। लेकिन दुर्वासा कृष्ण पर नाराज़ हो जाते हैं। कुछ वर्ष पश्चात कुंती के तीर्थयात्रा पर निकलने का समाचार प्राप्त होते ही कृष्ण कुंती बुआ को ससम्मान द्वारका ले आते हैं। कुंती बुआ से ही दुर्योधन, शकुनि द्वारा आरण्यक जीवन में पांडवों को अपमानित करने की योजना, दुर्योधन-चित्रसेन (गंधर्व) युद्ध, दुर्योधन की दुर्गति तथा चित्रसेन द्वारा बंदी बनाया जाना, अंत

---

[45] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 7 संघर्ष (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ. 308

में कौरवों द्वारा पांडवों की सहायता लेना, अर्जुन चित्रसेन युद्ध, दुर्योधन को गंधर्वों से छुड़ाना, बंदी दुर्योधन अर्जुन द्वारा छुड़ाने पर अपने आपको अपमानित महसूस करना तथा प्रायोपवेशन व्रत (अन्न त्याग) धारण करना और अंत में कुंती के ही समझाने पर व्रत त्याग करना आदि बातों का पता चल जाता है। कुंती बुआ अपने बच्चों के अज्ञातवास से चिंतित थी। वास्तव में पांडव अत्यंत सक्षम होने से कुंती बुआ की चिंता निरर्थक थी लेकिन कृष्ण कुंती बुआ को आश्वस्त नहीं कर पाये। कृष्ण कहते हैं, "मैं कुछ कह नहीं पाया, क्योंकि एक और जीवन का कठोर सत्य था और दूसरी ओर मेरा कोरा जीवन दर्शन। एक का आधार भोगा हुआ यथार्थ था और दूसरे का आधार चिंतन। भोग के समक्ष चिंतन हमेशा असमर्थ दिखता है, पर होता नहीं है। भोग वर्तमान का होता है, इसलिए उसमें ताजापन होता है। सद्यता होती है। चिंतन तो शाश्वत होता है, वह समझ से कुछ दूर होता है। उस तक पहुँचने के लिए समझ को कुछ प्रयत्न करना पड़ता है।"[46] कुंती बुआ के कुछ दिनों के वास्तव्य के बाद उनकी ससम्मान विदाई की जाती है। एक दिन गुप्तचरों द्वारा जयद्रथ द्वारा द्रौपदी के अपहरण, पांडवों द्वारा जयद्रथ के पराजय तथा द्रौपदी द्वारा जयद्रथ के अपमान की घटना का समाचार कृष्ण को प्राप्त होता है। जिससे कृष्ण चिंतित हो जाते हैं।

कृष्ण अपने पुत्र सांब (जांबवंती पुत्र) के कारण अंतपुर में असुरक्षितता महसूस करते हैं। साथ अपनी भाव पत्नियों के साथ सांब द्वारा किए गए दुष्कृत्य के कारण कृष्ण विचलित और क्रोधित होते हैं। रूक्मिणी द्वारा सांब को माफ करने की बात सुनकर कृष्ण उसे समझाते हैं, "रूक्मिणी, यह मत भूलो कि सांब का पिता होने के साथ-साथ मैं द्वारका का शासक भी हूँ। शासन का आधार है, न्याय और न्याय अपना-पराया कुछ नहीं देखता।"[47] कृष्ण सांब को न्याय व्यवस्था के समक्ष उपस्थित करते हैं लेकिन अमात्य मंडल फैसला सुनाने में असमर्थता प्रकट करते हैं। तब अपनी भाव पत्नियों के समक्ष कृष्ण सांब को कोढ़ी होने का

---

[46] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 7 संघर्ष, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ.180
[47] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 7 संघर्ष, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ. 216-217

शाप देते हैं। तबसे सांब में हीनता बोध भर जाता है। एक अच्छा नट होने पर भी वह कृष्ण के सौतेले भाई सारण के पुत्रों की कुसंगत में आ जाता है। जो एक दिन महर्षि दुर्वासा का मज़ाक उड़ाने के चक्कर में पूरे यादव वंश को शापग्रस्त बना देता है। साथ ही यादवों के विनाश का मूल कारण बनता है। कृष्ण की अनिच्छा और अनुपस्थिति में बलराम सांब और दुर्योधन पुत्री लक्ष्मणा का विवाह रचाते हैं। जिस में शकुनि की कूटनीति युद्ध में पांडवों के विपक्ष में कृष्ण समर्थन प्राप्त करने की बुद्धि से कार्यरत थी।

एक दिन विराट राज्य के सेनापति कीचक के वध का समाचार प्राप्त होता है। जिससे कृष्ण समेत कौरव भी पांडवों के विराट राज्य में होने के प्रति शंकित हो जाते हैं। इसी से कृष्ण चिंतित हो जाते हैं। सुशर्मा के विराट पर आक्रमण करने पर अर्जुन उसका विराट की ओर से मुकाबला करके उसे पराजित कर देता है। पांडवों के अज्ञातवास में ही उनकी पहचान जताकर उन्हें तेरह वर्ष तक इंद्रप्रस्थ से दूर रखने के लिए कौरव भी विराट पर आक्रमण कर देते हैं जिसमें पांडव खुलकर सामने आ जाते हैं। अर्जुन अपने धर्नुकौशल्य से कौरवों के कपड़े तक उतार देता है। कौरवों को शर्मनाक हार का सामना करना पड़ता है। विराट के विजय के परिणाम स्वरूप अर्जुन-सुभद्रा पुत्र अभिमन्यू का विवाह विराट की राजकुमारी उत्तरा के साथ तय किया जाता है। कृष्ण-बलराम समेत अपने भांजे अभिमन्यू को लेकर विराट पहुँचते हैं। कृष्ण की सलाह पर हस्तिनापुर भी आमंत्रण भेजा जाता है लेकिन वहाँ से कोई उपस्थित नहीं होता। पांडवों के अज्ञातवास काल को कौरव अपूर्ण मानते थे जिससे पांडवों का उनका राज्य आसानी से प्राप्त होगा इसको लेकर कृष्ण समेत सभी पांडव समर्थकों के मन में शंका उपस्थित हो रही थी। अभिमन्यू-उत्तरा के विवाह पश्चात आभार सभा का आयोजन किया जिसमें कृष्ण ने पांडव राज्य वापस देने पर बहस छेड़ दी। सभा में उपस्थित सभी राजाओं ने पांडवों का समर्थन किया। अंत में हस्तिनापुर शांति दूत भेजने का निर्णय लिया गया। कृष्ण ने द्वारका लौटते समय द्रुपद राजा को युद्ध की आशंका जताते हुए सभी राजाओं के यहाँ समर्थन के लिए दूत भेजने की बात कही। द्वारका

पहुँचते ही पांडवों का दूत कृष्ण को (उपलव्य- पांडवों का निवास नगर) बुलाने आ जाता है। पांडवों द्वारा आमंत्रित होने पर कृष्ण तुरंत वहाँ उपस्थिति हो जाते हैं। पांडवों द्वारा हस्तिनापुर दूत भेजने, पांडवों का राज्य वापस देने तथा शांतिपूर्ण रीति से पांडव अपने राज्य को हासिल करने के लिए आकांक्षी होने की बात शांति दूत द्वारा पूरे जोश-होश के साथ करने की बात कृष्ण को बताई गई। साथ ही शांति दूत ने यह भी स्पष्ट किया कि उन्हें उनका राज्य न मिलने पर पांडव युद्ध के लिए भी तैयार हैं जिससे हस्तिनापुर विशेषत: महाराज धृतराष्ट्र के भयभीत होने की बात सामने आई। इसलिए हस्तिनापुर से दूत रूप में धृतराष्ट्र का सारथी संजय पांडवों के पास (उपलव्य) आया था। उसीसे चर्चा करने के लिए कृष्ण को आमंत्रित किया था। लेकिन संजय से मिलकर कृष्ण हस्तिनापुर की मनीषा से परिचित हो गए। वास्तव में संजय द्वारा युधिष्ठिर को युद्ध न करने के लिए धर्म की बात कही जा रही थी लेकिन जिसमें पांडवों के राज्य लौटाने का कहीं नामोनिशान नहीं था। यह स्थिति पांडवों के लिए सम्मान जनक नहीं थी। युधिष्ठिर को छोड़कर कोई भी अपने अधिकार त्यागने के लिए तैयार नहीं था और कृष्ण की दृष्टि से अधिकार त्यागना नीतिसंगत भी नहीं था। संजय से वार्ता विफल होते ही कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार रहने के लिए सचेत करते हुए व्यक्तिगत रूप से सभी पांडवों को समर्थन प्राप्त करने के लिए तथा कौरवों के विपक्ष में युद्ध में सहायता प्राप्त करने के लिए सभी राजाओं के पास जाने की सलाह दी। भीम और द्रौपदी मूलत: शांति प्रस्ताव के विरोधी थे। वे इंद्रप्रस्थ से अधिक अपने प्रतिज्ञा और अपमान के लिए युद्ध चाहते थे। कृष्ण जब द्रौपदी से मिले तब कृष्ण द्वारा चलाए जा रहे शांति प्रस्ताव पर प्रतिरोध दिखाते हुए द्रौपदी ने कहा, ‘‘बस इतना ही समझो कि मुझे कुछ नहीं कहना है। जो कुछ कहना है, वह तेरह वर्ष से खुले इन केशों को।’’[48] इस प्रकार इस उपन्यास में आर्यवर्त राजाओं में कौरव-पांडवों के गृहकलह के बीज पनपने की पृष्ठभूमि पर कृष्ण के विचार तथा कृष्ण की महत्त्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डालने की कोशिश लेखक मनु जी

[48] कृष्ण की आत्मकथा-भाग 7 संघर्ष, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ.316

शर्मा ने इस खंड में की है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि इस खंड में कृष्ण के सखा या मित्र भाव का विकास अधिक हुआ है। सुदामा द्वारा लाया हुआ धान का चिवड़ा बड़े प्रेमभाव से खाते हैं। कृष्ण अपनी मित्रता निभाते हुए सुदामा की गरीबी दूर करने के लिए सुदामपुर नगरी का निर्माण करके उसे वहाँ का राजा बनाते हैं। कृष्ण योगावस्था में द्रौपदी चीरहरण प्रसंग में उसकी रक्षा करते हैं। अब तक वैज्ञानिकता अपनाएँ इस उपन्यास में लेखक ने पहली बार आध्यात्मिकता को स्थान दिया है। सुदामा की गरीबी दूर करके तथा द्रौपदी की रक्षा करके कृष्ण मित्रता की मिसाल के रूप में स्थापित होते हैं। कृष्ण-सुदामा की मिथकीयता को आधुनिक व प्रासंगिक बनाया गया है। कौरवों द्वारा पांडवों का राज्य हड़पने तथा द्रौपदी को अपमानित करने के लिए किए गए छल-कपट नितांत आधुनिक चित्रित हुए हैं। आधुनिक पारिवारिक विवादों का अत्यंत उग्र रूप इन प्रसंगों में मिथकीय रूप में चित्रित हुआ है। कृष्ण भौतिक साधनों के लिए आपस में झगड़ने के पक्ष में बिल्कुल नहीं हैं लेकिन न्याय और स्त्री सम्मान के लिए लड़ना आवश्यक मानते हैं। उनकी यह सोच उपन्यास को नितांत आधुनिक, प्रासंगिक तथा मानवतावादी बनाती है।

8. 'कृष्ण की आत्मकथा' भाग - 8 प्रलय

पांडवों को युद्ध के लिए तैयार कर कृष्ण द्वारका वापस आते हैं। एक दिन सात्यकि यादव राज कृतवर्मा के सेनापति के मृत्यु की सूचना लेकर कृष्ण के पास आते हैं। सात्यकि यादवी संघर्ष की ओर संकेत कर स्पष्ट करते हैं कि कृतवर्मा का आरोप और प्रचार है कि सात्यकि ने ही सेनापति की हत्या की है। कृष्ण महसूस करते हैं कि दुर्वासा के शाप का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ रहा है। कृष्ण सात्यकि को समझाकर वापस भेज देते हैं। कृष्ण को गुप्तचरों द्वारा दुर्योधन और अर्जुन के आगमन की सूचना मिलती है। कृष्ण दोनों को एक साथ मिलना चाहते थे इसलिए बीमार होने का नाटक रचते हैं। दुर्योधन पहले आगमन करता है शयनकक्ष में कृष्ण के सिरहाने बैठ जाता है। कृष्ण की नींद टूटे और उनका ध्यान

आकर्षित करने के लिए दुर्योधन खाँसता भी है लेकिन कृष्ण जानबूझकर सोने की मुद्रा बनाए रखते हैं। कुछ समय पश्चात अर्जुन का आगमन होता है। कृष्ण बीमारी की सूचना मिलते ही वे शयनकक्ष में पहुँचते हैं। दुर्योधन को अभिवादन करते हैं और कृष्ण के पर्यक पर पैताने बैठकर कृष्ण के पैर दबाने लगते हैं। नाटक के अनुसार कृष्ण आँखें खोलते हैं। अर्जुन को सामने पाकर उससे बातचीत बढ़ा रहे थे इतने में दुर्योधन अपनी उपस्थिति का आभास कराते हुए युद्ध के लिए सहायता माँगने के लिए प्रथम आने की बात कहता है। कृष्ण दुर्योधन और अर्जुन को मध्य में स्वयं की स्थिति दर्शाते हुए कहते हैं, "मैं यदि स्वयं को बांटूँ तो एक भाग में मेरी चतुरंगिणी सेना होगी, मेरी सारी सैन्य संपदा होगी, मेरा आयुध भंडार होगा और दूसरे भाग में मैं अकेला होऊँगा। मेरा यह संकल्प भी है कि मैं अकेला रहकर भी युद्ध नहीं करूँगा। अस्त्र नहीं उठाऊँगा।"[49] इसके बाद प्रथम अर्जुन कृष्ण का और दुर्योधन कृष्ण सेना का चयन करते हैं।

कृष्ण दुर्योधन को बलराम से मिलने के लिए भेजते हैं। युद्ध से बलराम की अलिप्तता देखकर दुर्योधन नाराज़ हो चले जाते हैं। कुछ दिन पश्चात कौरव-पांडव युद्ध संधि-वार्ता के लिए कृष्ण को हस्तिनापुर से आमंत्रण प्राप्त होता है। कृष्ण उपलव्य होकर हस्तिनापुर जाना चाहते थे। जाने से पहले कृष्ण ने बलराम-अर्जुन भेंट कराई लेकिन बलराम ने किसी को अपना समर्थन न देने की बात कहीं। उपलव्य जाते समय वे यादव नरेश कृतवर्मा से भी मिले। उनके मन बैठा मुसलवाला भ्रम दूर करने की कोशिश की। कृतवर्मा के मांगने पर मूसल उनको देने की बात कही। लेकिन कृतवर्मा की नाराज़गी बनी रही। अर्जुन ने भी कृतवर्मा से पांडवों के पक्ष में युद्ध सहायता की बात कही लेकिन कृतवर्मा पहले ही अपना समर्थन कौरव पक्ष को दे चुके थे।

कृष्ण उपलव्य पहुँचकर जब द्रौपदी से मिलते हैं। वह संधि के लिए विरोध दर्शाती हुई कहती है कि, "किस लिए? किस बात के लिए संधि? आप मेरी यह खुली वेणी देख रहे

[49] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा-भाग 8 प्रलय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.15

है। क्या यह जीवनभर खुली ही रह जाएगी? जब से दु:शासन ने इसे पकड़कर खींचा है तब से यह उसके रक्त के लिए छटपटा रही है।"[50] द्रौपदी और भीम प्रतिशोध लेना चाहते हैं लेकिन युधिष्ठिर संधि के पक्ष में थे। कृष्ण के पूछने पर युधिष्ठिर स्पष्ट कहते हैं कि "मेरा अंतिम प्रस्ताव होगा कि, हम किसी भी स्थिति में अपने भाइयों से लड़ना नहीं चाहते। यदि कौरव हमें पाँच ग्राम भी दे दे तो हम पाँचों भाई उसी में जी-खा लेंगे।"[51] कुंती बुआ एकांत कृष्ण संमुख में कर्ण स्वयं का पुत्र होने की बात को स्वीकारते हुए उसके जन्म का रहस्योद्घाटन कर देती है।

कृष्ण पांडवों का संधि प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर पहुँचते हैं। दुर्योधन, कर्ण, शकुनि कृष्ण के स्वागत के लिए उपस्थित रहते हैं। दुर्योधन कृष्ण को अपने पक्ष में करने के लिए उनके स्वागत और निवास का बढ़िया प्रबंध करता है। लेकिन कृष्ण उसकी योजना को विफल बनाते हुए दूत कर्म की बात कहकर हस्तिनापुर के महामात्य विदुर के पास ठहर जाते हैं। वहाँ एक दिन पूर्व ही कुंती बुआ का आगमन हो जाता है। कृष्ण विदुर चर्चा में दुर्योधन की कृष्ण को बंदी बनाने की योजना का पता चल जाता है। इस हस्तिनापुर यात्रा में कृष्ण के साथ सात्यकि भी उपस्थिति थे। विदुर के निवास में ही द्रोणाचार्य, कृपाचार्य से भेंट होती है। वे अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए भी पांडवों के हितैषी थे। पितामह भीष्म ने पांडवों पर हुए अन्याय को स्वीकारते हुए संधि को सर्वोपरि माना। पांडवों को यदि कुछ कम भी मिले तो भी संधि मानने के लिए कहा। इन अनौपचारिक वार्ताओं में कृष्ण ने महसूस किया कि दुर्योधन मंडली छोड़कर कोई भी युद्ध के पक्ष में नहीं है। एक दिन संधि वार्ता का आयोजन किया उस संधि वार्ता में कौरव समर्थक सभी राजाओं को आमंत्रित किया था। कृष्ण में पांडवों का पक्ष रखते हुए बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास पूर्ण करने की बात की। द्युतशर्त के अनुसार उनका राज्य लौटाने की माँग की। दुर्योधन ने प्रस्ताव को खारिज

---

[50] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा-भाग 8 प्रलय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.30

[51] वहीं, पृ.34

करते हुए अज्ञातवास अवधि दौरान उनके पहचाने जाने की बात की। जिसे पितामह ने गलत बताया। युधिष्ठिर के विचारानुसार कृष्ण ने सिर्फ पाँच ग्रामों की माँग की लेकिन दुर्योधन युद्ध के बगैर सुई के नोक के बराबर भी ज़मीन देने के लिए तैयार नहीं हुआ। अंत में उसने कृष्ण को बंदी बनाने की योजना बनाई लेकिन कृष्ण के रौद्र रूप को देखकर वह सफल नहीं हुई।

कृष्ण राजमहल से बाहर निकलते ही कर्ण उनके पीछे-पीछे चले गए। कृष्ण ने कर्ण को एक ओर ले जाकर उसके जन्म रहस्य से उसे अवगत कराया लेकिन कर्ण ने इन सारी बातों को झुठलाकर कहा कि, "राधा ही मेरी माता है और मैं सूतपुत्र हूँ। और कान खोलकर सुन लो कृष्ण मैं जीवन में अंतिम समय तक सूतपुत्र ही रहूँगा। मैं दुर्योधन के उपकार को भूला नहीं सकता, क्योंकि मैं सबकुछ हो सकता हूँ, कृतघ्न नहीं हो सकता।"[52] साथ ही कर्ण ने इस रहस्य का भेद न खोलने के लिए कृष्ण से कहा। जिससे कृष्ण की कर्ण के प्रति धारणा बदल गई। कृष्ण ने कुंती से कर्ण से हुई बातों का जिक्र किया। साथ ही स्वयं कुंती को कर्ण से मिलकर सारी बातें स्पष्ट करने की सलाह दी।

कृष्ण उपलव्य आकर संधि न होने की सारी बातें बताते हुए युद्ध की तैयारी पर जोर देते हैं। कृष्ण के परोक्ष सांब के आने और शापमुक्ति के लिए (चंद्रभागा) चेनाव नदी तट पर चले जाने की सूचना उन्हें प्राप्त होती है। युद्ध तैयारी के कारण कृष्ण द्वारका जा नहीं पा रहे थे। सात्यकि के द्वारा प्रद्युम्न को द्वारका को प्रशासन पर ध्यान देने और युद्ध के लिए तैनात सारे सैनिक हस्तिनापुर भेजने की बात करते हैं। रूक्मि को अपने अहंकार के चलते कौरव पक्ष और न पांडव पक्ष उसके सैन्य सहयोग को स्वीकारते हैं। सारी सेना के साथ पांडव कुरूक्षेत्र की ओर प्रस्थान करते हैं। हस्तिनापुर के निकट के पड़ाव में कुंती कर्ण से हुई भेंट की बात कृष्ण को बताती है। कर्ण ने अर्जुन को छोड़कर अपने चारों भाइयों को अभयदान दिया था। नकुल के मामा शल्य का कौरवों के पक्ष में चले जाना पांडवों को बड़ा धक्का था। फिर भी कृष्ण इसका फायदा उठाते हुए शल्य को कर्ण का सारथि बनने की सलाह देते हैं।

---

[52] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा-भाग 8 प्रलय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.64

मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी युद्ध का प्रथम दिवस था। युद्धारंभ से पूर्व ही मोह ग्रस्त अर्जुन युद्ध से विमुख हो गया तब कृष्ण ने उसे कर्म प्रेरणा दी। युधिष्ठिर आगे बढ़कर पितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से आशीर्वाद मांगते हुए उनकी अनुमति से ही युद्धारंभ करते हैं। पहले दिन विराट के दस पुत्रों की मृत्यु हो गई। दूसरा और तीसरा दिन पांडवों के पक्ष में रहा। सात्यकि के दस पुत्रों की मौत हुई। एक रात्रि के समय द्रौपदी ने भीष्म-दुर्योधन विवाद और पांडवों को मारने की भीष्म के प्रण की बात कही। तब कूटनीति के तहत द्रौपदी को भीष्म से आशीर्वाद दिलाकर कृष्ण पांडवों को पितामह भीष्म से अभयदान दिलाते हैं। पितामह भीष्म के प्रहारों से पांडवों के विजय की नाव डूबने लगी जिससे क्रोधित होकर कृष्ण ने हाथ में चक्र धारण किया। कृष्ण का शस्त्र न उठाने का प्रण टूट गया। लेकिन अर्जुन के समझाने पर वे मान गए। कृष्ण ने शिखंडी की आड़ में अर्जुन को भीष्म पर प्रहार करवाया। इच्छा मृत्यु के कारण उनकी मृत्यु तो नहीं हुई लेकिन वे शरशय्या पर चले गए। रात्रि प्रहर में जब सब लोग भीष्म से मिलने गए तब भीष्म ने स्वीकार किया कि, "और इतिहास इस बात को भी याद करेगा कि भीष्म अर्जुन के बाणों से धराशायी नहीं हुआ, वह धराशायी हुआ द्वारकाधीश की युक्ति से।"[53]

पितामह भीष्म के बाद द्रोणाचार्य सेनापति बने। कौरव पक्ष की ओर से युद्ध के लिए बनाए नियमों को तोड़ा जाने लगा। सेनापति द्रोण ने भी कौरव पक्ष को विजयी बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। कृष्ण ने पांडवों को भी युद्ध नियम तोड़ने की सलाह देते हुए कहा, "धर्म तभी तक है जब तक जीवन है। जब जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ता है तब धर्म का अस्तित्व ही खतरे में पड़ता है। ऐसे में धर्म यदि बंधन की तरह सामने आ जाए तो उससे मुक्त होना ही जीवन धर्म है। इसलिए अब तक जो हुआ, वह हुआ, अब हमें युद्ध नियमों की परवाह किए बिना युद्ध करना चाहिए।"[54] कौरव पक्ष सम्मान जनक संधि करने के लिए

[53] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा-भाग 8 प्रलय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.127
[54] वहीं, पृ.142

युधिष्ठिर को बंदी बनाना चाहते थे लेकिन अर्जुन के रहते यह संभव नहीं हो पाया। इसलिए अर्जुन को युद्ध से दूर करने के लिए संशप्तक युद्ध के लिए ललकारा गया। अर्जुन संशप्तकों से युद्ध करने जंगलों में चला गया। इधर कौरवों ने चक्रव्यूह रचा जिसमें अभिमन्यू मारा गया। अभिमन्यू की मृत्यु पर अर्जुन विचलित हुआ। उसने अपने भाइयों को भी भला-बुरा कहा। कृष्ण के समझाने पर अर्जुन ने अपना क्रोध और पश्चाताप त्यागकर जयद्रथ को सूर्यास्त के पूर्व मारने का प्रण लिया। कौरवों और विशेषत: द्रोणाचार्य ने उसके इस प्रण को असफल बनाने की भरसक कोशिश की लेकिन प्रकृति की कृपा और कृष्ण की सूझबूझ से अर्जुन सफल हुआ।

कृष्ण की कूटनीति के तहत इंद्र ने कर्ण को कवच कुंडल माँगे और कर्ण ने सहर्ष उसे दान कर दिए। जिससे इंद्र भी लज्जित हुआ। इंद्र ने कर्ण से प्रभावित होकर उसे एकाघ्नी प्रदान की। जिससे कृष्ण की योजना सफल होकर भी अधूरी रही। अब कौरवों-पांडवों का युद्ध सारे नियम तोड़ चुका था। अब युद्ध रात्रि में भी होने लगे थे जिससे कृष्ण ने युद्ध में भीमपुत्र घटोत्कच का उपयोग करके कौरवों में त्राही-त्राही मचा दी, जिससे दुर्योधन के कहने पर कर्ण ने एकाघ्नी का प्रयोग घटोत्कच पर कर दिया। घटोत्कच मारा गया लेकिन कृष्ण अर्जुन को बचाने की योजना में सफल हो गए। कृष्ण स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि, "वस्तुत: आज कौरव भी हारे थे और पांडव भी। यदि कोई जीता था तो मैं था और हारा था तो कर्ण था।"[55]

इसके बाद आचार्य द्रोण को मारने के लिए कृष्ण ने अफ़वाह फैलाई की अश्वत्थामा मारा गया। बेटे की मृत्यु की सूचना पाकर और धर्म (युधिष्ठिर) द्वारा उसकी पुष्टि सुनकर आचार्य द्रोण शस्त्र त्यागकर ध्यान करने लगते हैं। उसी समय धृष्टद्युम्न उनका शिरच्छेद करता है। भीम प्रतिशोध लेने के लिए सभी धृतराष्ट्र पुत्रों को मार रहे थे। दु:शासन को मारकर उसका रक्त निकालते हुए बड़ी निष्ठुरता से कहा कि, "तेरह वर्ष से खुली द्रौपदी की

---

[55] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा-भाग 8 प्रलय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.161

वेणी आज गुंथेगी।"[56] द्रोण की मृत्यु के पश्चात कर्ण कौरव सेनापति बन जाता है। लेकिन उस समय कौरव बड़ी दयनीय स्थिति में चले गए थे। शल्य कर्ण के सारथी बने थे। शल्य बार-बार कर्ण को हतोत्साहित करने का काम करते थे। एक बार कर्ण ने नकुल और सहदेव को जीवित छोड़ दिया जिससे दुर्योधन नाराज़ हो गया। अर्जुन से युद्ध करते समय मैदान में कर्ण के रथ का पहिया फँस गया। कृष्ण ने अर्जुन को कर्ण पर बाण चलाने के लिए उकसाया जिसमें कर्ण की मृत्यु हुई। कर्ण की तेजस्विता से कृष्ण स्वयं प्रभावित थे। रात्रि समय में कृष्ण उसी के चिंतन में सोये थे कि स्वप्न में कर्ण कृष्ण से पूछते हैं कि, "मैं तुमसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। लोग कहते हैं कि तुम्हारा आविर्भाव धर्म की स्थापना के लिए हुआ है और तुम इसे स्वीकार भी करते हो। तब बताओं मेरा वध करवाने में तुमने किस धर्म की रक्षा की? ऐसा तुमने क्यों किया? क्या मैं अधार्मिक था?........तुम्हें केवल मेरा जलता हुआ प्रतिशोध ही दिखा।"[57] कृष्ण उसके किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाए। कृष्ण अपने ही बारे में कहते हैं, "युध्दक्षेत्र में अर्जुन की हर शंका का समाधान करनेवाले 'गीता' का उपदेश देनेवाले आखिर इस समय तुम पराजित हो गए।"[58] कर्ण की मृत्यु से दुर्योधन का पांडवों पर विजय पाने का सपना चूर हो गया। दुर्योधन युद्ध से भागकर एक सरोवर के निकट गुफा में छिप गया। बलराम तीर्थयात्रा से सीधे कुरूक्षेत्र लौटे थे। भीम के ललकारने पर दुर्योधन बाहर आया। बलराम सम्मुख दो शिष्यों में गदायुद्ध हुआ जिसमें भीम ने कृष्ण के कहने पर कटी के नीचे प्रहार करके दुर्योधन को गिरा दिया जो गदायुद्ध नियम में विपरीत था। जिससे बलराम क्रोधित हुए लेकिन कृष्ण ने बीच-बचाव कर लिया। अब कौरवों में एकमात्र युयुस्तु बचा था क्योंकि उसने युद्धारंभ में ही पांडवों का पक्ष लिया था।

अपने पुत्रों की मृत्यु से धृतराष्ट्र और गांधारी दोनों दु:खी थे। पांडव भी अपने विजय पर उतने खुश नहीं थे। चारों ओर दु:ख का वातावरण था। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने पिता की

---

[56] वहीं, पृ.169

[57] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा-भाग 8 प्रलय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.178

[58] वहीं, पृ.179

मृत्यु का प्रतिशोध पांडव पुत्रों की हत्या करके लिया। पांडवों ने उसे पकड़कर द्रौपदी के कहने पर उसके मस्तक की मणि छिनकर उसे तड़पता छोड़ दिया। कृष्ण ने भीम प्रतिमा बनाकर धृतराष्ट्र के छल से उसे बचाया। पांडवों की हस्तिनापुर वापसी हुई। युधिष्ठिर को राजा बनाया गया। फिर पांडवों द्वारा अश्वेमध यज्ञ की तैयारियाँ शुरू हुई। कृष्ण कहते हैं, "अब मैं सोचने लगा कि इच्छाओं का कोई अंत नहीं। एक इच्छा पूरी हुई कि तुरंत दूसरी ने जन्म लिया। अब हस्तिनापुर का सिंहासन मिला तो अश्वमेध दिखाई पड़ने लगा। मानव लिप्सा का अंतहीन सिलसिला है। जो इस मारिचिका के पीछे दौड़ा, अंत में मरीचिका ही उसे निगल गई।"[59] दूसरी तरफ यादवी युद्ध आरंभ हो चुका था। कृष्ण के सारे परिवार वाले युद्ध में सम्मिलित थे। कृष्ण अर्जुन, उद्धव, छंदक, अक्रुर चाचा को लेकर निकले। अक्रूर चाचा और छंदक को लेकर युद्ध भूमि प्रभास क्षेत्र गए। रास्ते में उंत्तग मुनी से भेंट हुई। उन्होंने प्रभास क्षेत्र के विदारक दृश्य का वर्णन करते हुए कहा कि मैरेय नशे में यादवों का नाश हुआ। प्रद्युम्न ने सांब को मारा और प्रद्युम्न की मृत्यु हो गई। कृष्ण स्वयं युद्ध भूमि में उपस्थित होते हैं उन्हें भी युद्ध में सम्मिलित होना पड़ता है। युद्ध में अक्रुर चाचा और छंदक की मृत्यु होती है। अकेले कृष्ण द्वारका वापस आते हैं। वे द्वारका के बाहरी वन में ही अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठकर स्वप्नदृष्य देखते है कि द्वारका समुद्र में डूब रही है। वे अर्जुन, उद्धव को सचेत करते हुए द्वारका के लोगों को यथाशीघ्र द्वारका छोड़ने की सूचना देने के लिए कहते हैं।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि स्वार्थ पर आधारित संघर्ष प्रलय का रूप धारण करके विलय का कारण बन जाता है। कृष्ण की आत्मकथा के इस अंतिम खंड में कृष्ण की मिथकीय व्यक्तिरेखा एक छलिया के रूप में प्रकट होती है। व्यापक न्यायहित में वे अन्यायियों के विरूद्ध हर प्रकार का छल करके उन्हें नष्ट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साथ ही कृष्ण की मित्रता का चरम रूप भी इस खंड में दिखाई देता है। वे एक महाराजा

[59] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा-भाग 8 प्रलय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.258

होकर भी उन्होंने अपने मित्र अर्जुन के रथ का सारथ्य किया। इस अंतिम खंड में आधुनिक मानवी मनोविज्ञान व भारतीय दर्शन शास्त्र पर आधारित प्रागैतिहासिक घटना 'महाभारत युद्ध' की सहायता से लेखक ने मानवी आचरण के सूक्ष्म नीति-नियमों को अधोरेखित किया है। 'कृष्ण की आत्मकथा' उपन्यास में मिथकीय कृष्ण के चरित्र को चित्रित करते हुए आधुनिक मनुष्य के लिए व्यक्तिगत व सामाजिक स्तर पर उत्तम आचरण के लिए कालजयी उदाहरण प्रस्तुत किया है। औपन्यासिक मिथकीय कृष्ण आधुनिक विषम सामाजिक स्थितियों में और भी प्रासंगिक बन जाते हैं।

II) द्रोण की आत्मकथा :

लेखक मनु शर्मा ने आधुनिक असंतुलित शैक्षिक व्यवस्था व परवश अध्यापकों की दशा व दिशा को प्रागैतिहासिक महाभारतीय गुरू द्रोण की कथा को मिथकीय आधार बनाकर सन् 1976 में 'द्रोण की आत्मकथा' उपन्यास का निर्माण किया। 'द्रोण की आत्मकथा' का आरंभ उनकी जन्मकथा से लेकर होता है। अप्सरा घृताची और तपस्वी ऋषि भरद्वाज की वासनाओं के परिणाम के रूप में द्रोण का जन्म हुआ। लेकिन घृताची ने द्रोण का पालन-पोषण नहीं किया। लेखक लिखते हैं, "अप्सराएँ किसी सात्विक की साधना को पथभ्रष्ट करने में प्रवीण होती है। सुना है, इसमें उन्हें यश भी मिलता है। किंतु पता नहीं क्यों, वे अपने ही बच्चों को पालने से कतराती है।.....चीलों की तरह अन्य कौए ही उनके बच्चों का पालन करते हैं।"[60] जन्म के पश्चात घृताची उसे भरद्वाज के आश्रम में यज्ञ कलश (द्रोण) के पास चुपचाप छोड़ चली गई। यज्ञ कलश के पास पाए जाने से बालक का नाम द्रोण हो गया। भरद्वाज के आश्रम में पांचाल नरेश पृषत के पुत्र द्रुपद पढ़ते थे जो द्रोण के हमउम्र थे। द्रोण महसूस करते हैं कि द्रुपद के साथ आश्रम में नरमाई बरती जाती और उनके साथ कड़ाई। इसके कारण स्वरूप उन्हें पता चलता है कि आश्रम भरद्वाज के जीविकोपार्जन का माध्यम है और आश्रम व्यवस्था बहुत हद तक नरेश पृषत की सहायता पर निर्भर थी। द्रोण कहते हैं, "आश्रम, तपस्या और विद्या के केंद्रबिंदु राजाओं के मुखापेक्षी हो गए थे। समाज का यह पतन मेरे जन्म के पूर्व से ही आरंभ हो गया था।"[61] क्षत्रियों के लिए शास्त्र विद्या से अधिक शस्त्र विद्या का महत्व होने के कारण द्रुपद अग्निवेश्य के आश्रम में शस्त्र विद्या प्राप्त करने चले गए। आचार्य भरद्वाज ने भी अपने पुत्र द्रोण को भी अग्निवेश्य के आश्रम में शस्त्रविद्या सीखने के लिए भेज दिया क्योंकि वे जानते थे कि, "पहले जैसा अब समाज में शास्त्रज्ञान का सम्मान नहीं रह गया। शास्त्रज्ञ लोग आश्रम में केवल तपस्या करते

---

[60] मनु शर्मा, द्रोण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.8

[61] वहीं, पृ.16

रह जाते हैं। शस्त्रविद्यावालों की ही राजाओं के यहाँ पूछ रह गई है।"[62] द्रुपद ने द्रोण के साथ अग्निवेश्य आश्रम में शस्त्रज्ञान प्राप्त किया लेकिन उसके सैद्धांतिक पक्ष पर वह अध्ययन न कर सका उसका यह काम उस समय द्रोण कर देता। जिसके चलते द्रोण और द्रुपद एक-दूसरे को अपना अभिन्न मित्र मान रहे थे। अग्निवेश्य के आश्रम में मन न रमने से द्रुपद ने आश्रम छोड़ दिया और कुछ दिनों पश्चात द्रोण अग्निवेश्य से दीक्षित होकर लौटे।

द्रोण लौटते ही पिता भरद्वाज की मृत्यु हो गई। एक दिन हस्तिनापुर के राजा शांतनु ने द्रोण का विवाह ऋषि शरद्वान की पुत्री कृपी से करा दिया। वैवाहिक सुखी जीवन आश्रम की खराब स्थिति से प्रभावित होने लगा। द्रोण को सूचना मिली थी कि जमदग्नि पुत्र परशुराम किसी ऐसे शास्त्रज्ञ ब्राह्मण की खोज कर रहे हैं जिसे वे अपनी सारी संपदा दे। उसे पाने के लिए द्रोण निकल पड़े। वहाँ पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि वे अपनी संपदा महर्षि कश्यप को दे चुके हैं। अत: द्रोण उनसे शास्त्र ज्ञान प्राप्त करके वर्षों बाद लौटे। संपदा के अभाव में स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई थी। कृपी ने एक पुत्र को जन्म दिया था लेकिन वह दूध के अभाव में हमेशा रोता रहता था। कृपी उसे दूध बताकर चावल का घोल पिलाया करती थी। कृपी द्रोण पर द्रुपद से सहायता माँगने का दबाव बनाती है। जब द्रोण द्रुपद के पास पहुँचते हैं तब द्रुपद न सिर्फ पहचानने से इनकार करते हैं बल्कि अपमानित भी करते हैं। प्रतिशोध की ज्वाला लेकर द्रोण वापस लौटते हैं। दिन-रात अपमान का प्रतिशोध लेने की भावना उनका चैन हर लेती है। द्रोण हस्तिनापुर जाने की योजना बनाते हैं। वहाँ पहुँचकर वे कौरव कुमारों और पांडव पुत्रों के राजकीय आचार्य बन जाते हैं। पांडू पुत्र अर्जुन की धनुर्विद्या के प्रति सबसे अधिक लगन थी। वह दिन भर अभ्यास करता रहता। उसकी लगन देखकर द्रोण ने उसे रात्रि में भी अभ्यास करने की प्रेरणा दी। एक दिन निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य शिष्यत्व प्राप्त करने के लिए आचार्य द्रोण के पास आया। आचार्य द्रोण उससे प्रभावित भी हुए। एकलव्य में वे सारे गुण थे जो द्रोण एक छात्र में तलाशते थे। लेकिन द्रोण की बुद्धि ने

---

[62]मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा-भाग 8 प्रलय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.17

एकलव्य को स्वीकारा नहीं। द्रोण कहते हैं, 'मेरी बुद्धि बोल उठी, तुम ऐसा कभी मत करना। तुम्हारा शिष्यत्व प्राप्त होते ही इसका तेज सूर्य की तरह प्रचंड हो जाएगा।.....तुमने अर्जुन को अतुलनीय होने का आशीर्वाद दे दिया है। उसका क्या होगा?.....इस समय तुम हस्तिनापुर के मात्र राजकीय चाकर हो। राजकीय अनुमति के बिना तुम किसी को शिक्षा नहीं दे सकते।"[63]

उन दिनों कौरवों और पांडवों के बीच विद्वेष की भावना निरंतर बढ़ रही थी। दुर्योधन पांडवों को अपमानित करने की कोशिश करते रहता। राजकुमारों के बीच आयोजित प्रतियोगिता में अर्जुन ने अव्वल प्रदर्शन किया। भीम के ललकारने पर सूतपुत्र कर्ण ने अर्जुन के बराबरी के सारे कर्तब दिखाने का प्रण स्वीकार किया। किंतु कृपाचार्य ने वह राजकुमार न होने से उसे अनुमति नहीं दी। दुर्योधन ने उसे तुरंत अंग देश का राजा बना दिया। फिर भी उसे प्रतियोगिता में सम्मिलित होने नहीं दिया। उन्हीं दिनों द्रोण और अश्वत्थ के बीच दूरियाँ बढ़ती गई। वास्तव में द्रोण अर्जुन से संबंद्ध थे और अश्वत्थ दुर्योधन से। एक दिन द्रोण ने अपने सभी छात्रों को आखेट पर ले गए और वहाँ एकलव्य के धनुर्विद्या का अद्भुत कौशल देखकर प्रभावित हुए। एकलव्य ने द्रोण को अपना गुरू मान लिया था। उनकी प्रतिमा बनाकर उसने अध्ययन किया था। द्रोण ने एकलव्य अर्जुन को पराजित न कर दे इसलिए उसके दाहिनी हाथ का अँगूठा गुरू दक्षिणा में माँग लिया। एकलव्य ने पलक झपकते ही अँगूठा काटकर दे दिया। अपनी स्वार्थ बुद्धि तथा परवशता के कारण द्रोण को अपनी माँग पर गहरा पश्चाताप हुआ। "सचमुच मेरे लिए यह अप्रत्याशित था। मैंने कभी नहीं सोचा था कि कोई शिष्य ऐसा भी कर सकता है। मुझे आकाश काँपता नजर आया, धरती हिलती नजर आई। एक शिष्य के महासमर्पण या आचार्य की नीचता पर।"[64]

कौरवों-पांडवों की शस्त्रविद्या पूरी होने पर आचार्य द्रोण ने गुरूदक्षिणा के रूप में वर्षों

[63] मनु शर्मा, द्रोण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.61

[64] मनु शर्मा, कृष्ण की आत्मकथा-भाग 8 प्रलय, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.84

से पाल रखी प्रतिशोध की भावना को प्रकट किया और कहा मेरी गुरूदक्षिणा के रूप में जो द्रुपद को बंदी बनाकर लाएगा वही मेरा प्रिय शिष्य कहलाएगा। पहले कौरवों ने प्रयास किया लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली परंतु अर्जुन ने गुरूदक्षिणा के रूप में द्रुपद को बंदी बनाकर गुरू द्रोण के सम्मुख उपस्थित किया। द्रुपद को बंदी बनाने पर भी द्रोण को अपनी ही हार महसूस हुई क्योंकि द्रुपद का बंधन बाहरी था। द्रोण का भीतर था। द्रोण ने अपनी प्रतिशोध की भावना के कारण ही राजकीय आचार्य पद स्वीकार किया था। द्रोण ने द्रुपद से आधा राज्य ले लिया और उसे मुक्त कर दिया। लेकिन तब तक द्रुपद में प्रतिशोध की भावना जन्म ले चुकी थी। द्रोण ने अहिच्छत्र नगरी को अपने राज्य की राजधानी बनाई।

युधिष्ठिर को हस्तिनापुर का युवराज घोषित किया गया और कुछ ही दिनों में कुंतीसमेत पांडवों को नए निर्माण किए गए वारणावत नगर भेजने की योजना बनाई। द्रोण को दासी पुलोमा द्वारा वारणावत में रचे जा रहे षड्यंत्र की सूचना मिली। लेकिन पांडवों का हित चाहते हुए भी यह कौरव-पांडवों का आपसी मामला मानकर द्रोण इससे दूर रहे। पांडव वारणावत चले गए और कुछ ही दिनों में पांडवों के जल मरने की सूचना प्राप्त हुई। हस्तिनापुर की जनता इन सारे षड्यंत्र के पीछे महाराज धृतराष्ट्र का हाथ होने की बात कह रही थी। एक दिन धृतराष्ट्र ने द्रोण को पत्र भेजकर मिलने के लिए आमंत्रित किया। जिससे वे अपने बचाव पक्ष में कुछ तर्क दे सके। द्रुपद पुत्री कृष्णा के विवाह स्वयंवर का आमंत्रण सभी आर्यावर्त को प्राप्त हुआ था। आचार्य द्रोण ने भी अश्वत्थ को सम्मिलित होने के लिए भेजा था कि यदि कृष्णा इस परिवार की बहू बनेगी तो प्रतिशोध की भावना समाप्त हो जाएगी। फिर अचानक पांडवों के जीवित होने और अर्जुन द्वारा द्रौपदी को जीतने का समाचार प्राप्त हुआ जिसका गहरा धक्का आचार्य द्रोण को पहुँचा, क्योंकि जो सबसे प्रिय छात्र था वह द्रुपद का जामाता बन गया। पांडवों के जीवित होने से पांडवों संबंधी नीति तय करने के लिए धृतराष्ट्र ने भीष्म, द्रोण और विदुर से सलाह की और पांडवों को सम्मान पूर्वक बुलाया। फिर राज्य का विभाजन करके आधा राज्य (खांडववन) उन्हें दे दिया गया।

जहाँ उन्होंने ख़ूबसूरत राजधानी इंद्रप्रस्थ की स्थापना की। पांडवों ने राजसूय यज्ञ का संकल्प भी किया। द्रोण और विदुर कौरव-पांडवों के बीच की टकराहट देखते हुए चिंतित हुए। दोनों इस यज्ञ को संबंधों में बाधक मानते थे। विदुर पांडवों की मानसिकता दर्शाते हुए कहते हैं, "महत्वाकांक्षा हानि और लाभ से निरपेक्ष होती है, आचार्य। वह केवल अहं के धरातल पर कुंडली मारकर नागिन की तरह फुफकारती है।"[65] राजसूय यज्ञ में द्रोण भी ससम्मान आमंत्रित थे और राजसूय यज्ञ की व्यवस्था पर निगरानी रखने की ज़िम्मेदारी भीष्म और द्रोण को सौंपी गई थी। यज्ञ में अग्रपूजा को लेकर विवाद पैदा हो गया। पितामह भीष्म के अनुसार कृष्ण की अग्रपूजा की जाने लगी किंतु अश्वत्थ वे बाद में चेदिराज शिशुपाल ने इसका विरोध किया। साथ ही सभा को संबोधित करते हुए पहले कृष्ण तथा पश्चात पितामह भीष्म को अपमानित किया। अंत में कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से उसका वध कर दिया।

द्रोण द्रौपदी को द्रुपद की पुत्री के रूप में देखते थे जिससे उसके प्रति कभी ममत्व भाव जागृत नहीं हो पाया और जब से द्रौपदी ने पांडवों पर अधिपत्य स्थापित किया तबसे उसके प्रति द्वेष की ज्वालाएँ ही फूटती। एक दिन शकुनि ने द्रौपदी द्वारा दुर्योधन का अपमान करने की घटना सुनाई तथा द्रौपदी के जन्म रहस्य के पीछे आचार्य द्रोण की हत्या की बात बताई। आचार्य याज ने उसे यज्ञ का पौराहत्य किया था। द्रोण पीड़ित हो सोचते रहे, "इसमें क्रोध करने की कौन-सी बात है? याज ने धन के लिए अपना पौराहित्य बेचा और तुमने धन के लिए अपना आचार्यत्व। तुम दोनों में अंतर ही कितना। दोनों अपनी-अपनी जगह बिके हुए हो।"[66] एक दिन पूलोमा शकुनि-गांधारी संवाद और शकुनि के षड्यंत्र (पांडवों को चौरस के लिए आमंत्रित करने ओर छल से पराजित करने) की सूचना लेकर आई। हस्तिनापुर के पुजारी आदित्य भी अपनी जान बचाकर अहिच्छत्र आया था। उसने हस्तिनापुर के उपामात्य प्रथम की हत्या दुर्योधन द्वारा करने की सूचना दी। पुलोमा पांडवों

[65] मनु शर्मा, द्रोण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.121-122
[66] मनु शर्मा, द्रोण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.145

को षड्यंत्र के प्रति सचेत करने के लिए इंद्रप्रस्थ गई थी लेकिन द्रौपदी द्वारा वह अपमानित होकर लौटी थी। पांचाली के अहं से अपमानित पुलोमा अत्यंत दु:खी थी। उसने पांचाली के विरूद्ध हस्तिनापुर में प्रचार किया।

कुछ दिनों पश्चात द्युतक्रीड़ा में दर्शक के रूप में आमंत्रण पाकर द्रोण हस्तिनापुर पहुँचे। परंतु वहाँ षड्यंत्र फूटने के भय से दुर्योधन के अनुशासन का आतंक इतना था कि कोई अतिथि एक-दूसरे से मिल नहीं सकता था। द्युतसभा में भी यही स्थिति थी। आदित्य द्वारा पांडवों को शकुनि के छल की सूचना देने की कोशिश सफल नहीं हो पाई। सभी प्रमुख अतिथियों की उपस्थिति में शकुनि ने युधिष्ठिर से सभी भाइयों सहित सारा वैभव जीत लिया। अंत में युधिष्ठिर पत्नी द्रौपदी को भी हार गए। विदुर ने दुर्योधन को समझाने की कोशिश की लेकिन वह विफल रही। ऐसी स्थिति से उबकर द्रोण सभागार से बाहर आ गए। सभा के बाहर जाते ही सभा का कोलाहल बढ़ता गया। दासियों ने सूचना दी दु:शासन द्वारा द्रौपदी को निर्वस्त्र करने की कोशिश की गई। भीम ने कुरूवंश के विनाश की शपथ ली। अंत में भयग्रस्त होकर धृतराष्ट्र द्वारा पांडवों को मुक्त करते हुए सारा वैभव लौटा दिया। उसके बाद द्रोण अहिच्छत्र लौट आए। बाद में उन्हें सूचना मिली कि पांडव पुन: द्युत में हार गए और हार स्वरूप उन्हें बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास बिताना पड़ेगा। शकुनि पांडवों के पीछे गुप्तचर लगाना चाहता था लेकिन गांधारी ने इसे रोक दिया।

वर्ष बीतते गए। पांडवों का वनवास पूर्ण हो चुका था और अज्ञातवास भी। दुर्योधन विराट के सेनापति कीचक के वध की सूचना लेकर उपस्थित हुआ। उसने पांडवों के विराट में होने और विराट पर आक्रमण करने की बात कही। द्रोण अहिच्छत्र के सैन्य को युद्ध में सम्मिलित करने के हित में नहीं थे लेकिन पुत्र के आगे विवश थे। द्रोण कहते हैं, "राजहठ, बालहठ और नारीहठ से भी प्रबल होता है एकलौती संतान का हठ।"[67] द्रोण ने प्रधान सेनानायक मुक्तेश्वर से चर्चा कर उसकी सलाह अनुसार सैन्य को युद्ध में सम्मिलित नहीं

[67] मनु शर्मा, द्रोण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 227

किया। विराट आक्रमण में अर्जुन ने कौरव पक्ष की दुर्दशा करते हुए अर्धनग्न बनाकर छोड़ दिया। तत्पश्चात् पांडवों द्वारा भेजा गया अभिमन्यू-उत्तरा के विवाह का निमंत्रण अश्वत्थ ने दबाया जिससे द्रोण नाराज़ हुए। पांडवों का संधि प्रस्ताव कौरवों द्वारा ठुकराया गया। आदित्य द्वारा द्रोण को पांडवों के पक्ष में लड़ने के लिए निमंत्रण भेजा गया लेकिन द्रोण ने अपनी असमर्थता जताई। धृतराष्ट्र ने अपनी ओर से संजय को संधि प्रस्ताव लेकर भेजा था जिसके परिणाम स्वरूप कृष्ण संधि प्रस्ताव लेकर आए। कृष्ण ने दुर्योधन को समझाते हुए कहा, "युद्ध से संसार का कभी कल्याण नहीं हुआ है। युद्ध की भावना ही शत्रुओं का विनाश बाद में करती है और स्वविवेक का पहले।"[68] लेकिन दुर्योधन नहीं माना उल्टा उसने कृष्ण को बंदी बनाने की कोशिश की।

युद्ध की तैयारियाँ आरंभ हो गई। अश्वत्थ परस्पर सेनानायक को निर्देश देकर हस्तिनापुर चला जाता। एक दिन दुर्योधन का द्रोण को युद्ध परिषद का निमंत्रण पत्र प्राप्त होता है। युद्ध परिषद में युद्ध पूर्व मंत्रणा और प्रधान सेनापति का चयन करना था। द्रोण ने अपने भाषण में युद्ध से होनेवाले अहित की बात कही लेकिन किसी ने भी उसका समर्थन नहीं किया। पितामह भीष्म को प्रधान सेनापति बनाया गया। युद्ध दौरान भीष्म को अर्जुन ने शरशय्या पर सुला दिया। रात के प्रहर में भीष्म ने कर्ण के कुंती पुत्र होने का रहस्योद्घाटन किया। भीष्म के पश्चात द्रोण कौरव पक्ष के सेनापति बन गए। पांडव द्रोण को बधाई देन के लिए उसी रात उपस्थित रहें। उनके लौटते ही दुर्योधन ने युधिष्ठिर को बंदी बनाने की योजना बनाई। परंतु उसके लिए अर्जुन को युद्धभूमि से दूर रखना आवश्यक था। अर्जुन के विरूद्ध सुशर्मा द्वारा संशप्तक युद्ध पुकारने पर अर्जुन उनसे युद्ध करने जंगल में गया। फिर भी युधिष्ठिर को बंदी बनाने में असफलता मिली। दूसरे दिन चक्रव्यूह की रचना की गई जिसमें युधिष्ठिर तो फँसा नहीं लेकिन अर्जुन पुत्र अभिमन्यू की मृत्यु हुई जो पूर्णता अनीतिपूर्ण थी। इस अनीतिपूर्ण युद्ध के लिए उनका अंतर्मन उन्हें धिक्कारता रहा। स्वप्न में उन्हें अपने सारे

---

[68] वहीं, पृ.259

अनीतिपूर्ण व्यवहारों से पीड़ित लोग प्रश्न पूछते नजर आए। स्वप्न में ही एकलव्य प्रश्न पूछता है, "मैंने क्या अपराध किया था कि आपने मेरा दाहिना अँगूठा कटवा लिया था?.....पर मैं अपना अपराध जानता हूँ। मेरा यही अपराध था कि मैंने आपको अपना गुरू बना लिया था, वरना मेरा अँगूठा न काटा जाता।"[69] इस प्रकार प्रश्नों के घेरे में ही 'द्रोण की आत्मकथा' उपन्यास समाप्त होता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि लेखक इस उपन्यास के माध्यम से पूँजीवादी व्यवस्था में बिके हुए अध्यापकों के रूप में द्रोणाचार्य को आधुनिक युगबोध के चलते प्रस्तुत करते हैं। द्रोण आधुनिक संस्थागत अध्यापकों के मिथक बनकर उभरते हैं। अध्यापकों की मौलिकता का हनन तथा निर्णय की परवशता पर आधारित औपन्यासिक घटनाएँ उपन्यास को अत्यंत प्रासंगिक बनाता है। साथ ही एकलव्य व कर्ण यहाँ दलित पीड़ित छात्र के मिथक बनकर उभरते हैं। शिक्षा के केंद्रीकरण से निर्मित समस्याओं को अपनी ओर से प्रस्तुत और परिभाषित करने की कोशिश लेखक मनु शर्मा ने की है।

[69] मनु शर्मा, द्रोण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.286

III) कर्ण की आत्मकथा:

मनु शर्मा का 'कर्ण की आत्मकथा' उपन्यास भारतीय हिंदू पुराण 'महाभारत' के प्रसिद्ध पात्र 'कर्ण' पर आधारित है। कर्ण के समग्र जीवन को उसकी मनोवैज्ञानिकता के आधार पर आधुनिक स्थिति के अनुरूप चित्रित किया गया है। कर्ण के बाल्यकाल से लेकर महायुद्धजन्य स्थिति तक की परिस्थितियों में कर्ण की भूमिका और भावनाओं को सूक्ष्मता से अंकित किया गया है। कर्ण बचपन से ही अहंवादी और हठी प्रवृत्ति के थे। इसके पीछे मुख्य कारण उनकी अत्यधिक भावुकता रहा है। कर्ण कानीन संतान थे। जिनके माता-पिता ने उन्हें जन्म के साथ ही त्याग दिया था। गंगा नदी में बहा दिया था। इस बात का पता उनके माता-पिता बने राधा और अधिरथ के संवादों से जब कर्ण को होता है, तब उनके अवचेतन मन पर इसका गहरा असर होता है। कर्ण स्वयं संबंधी कहते है, "मैं एक ऐसा पुत्र हूँ, जिसके माता-पिता का पता नहीं है। शायद इसी स्थिति ने मेरे स्वभाव को अनावश्यक रूप से हठी बना दिया था।"[70]

बचपन में माला के साथ कर्ण की गहरी दोस्ती थी। दोनों समाज से दूर नदी तट या जंगल में अधिकतर समय बिताते थे। कर्ण प्रकृति सानिध्य में एकाकी जीवन में शांति का अनुभव करते थे। कर्ण का वास्तविक नाम वसुषेण था। एक दिन गाँव में कौशिक ऋषि आए और उन्होंने कर्ण के मन में बैठी राधा की संतान होने न होने की दुविधा को दूर करने के लिए उसकी माता 'राधा' के नाम के आधार पर कर्ण का नामकरण 'राधेय' कर दिया। तत्कालीन काल में वर्ण व्यवस्था अपने चरम पर थी। इसी वर्ण व्यवस्था के कारण राधेय का सूतत्व (सूतपुत्र होना) उसकी शिक्षा व्यवस्था के आड़े आ रहा था। राधेय की योग्यता और कौशिक ऋषि की सहानुभूति के कारण उसे कौशिक के आश्रम में प्रवेश मिलने के बावजूद 'उच्छिष्ट शिक्षा' के लिए बाध्य होना पड़ा। राधेय सोचता है कि, "क्या उच्छिष्ट शिक्षा ही मेरे प्रारब्ध के मूल में है? मैं सोचने लगा......विराट से उच्छिष्ट हुआ, गर्भ में आया। नियति

---

[70] मनु शर्मा, कर्ण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ. 286

से उच्छिष्ट हुआ, गंगाधारा में बहा दिया। समाज से उच्छिष्ट हुआ, सूत कहलाया-और अब उच्छिष्ट शिक्षा। यह कैसी विडंबना है मेरे साथ?''[71]

एक बार राधेय ने गाँव के मुखिया पंडित यज्ञदत्त का पुत्र महेश के प्राण गंगातट पर अजगर के पींड से बचाए थे लेकिन महेश ने उल्टा प्रचारित कर दिया तब से उसे स्वार्थी, झूठे ब्राह्मण के प्रति जातीय तिरस्कार हो गया था। इसी पंडित यज्ञदत्त ने ग्रामदेवता की पूजा में राधेय को 'होता' बनाने का विरोध किया। राधेय की जाति, गोत्र की अज्ञानता के कारण अपमानित किया था। गंगा तट पर कौरव द्वारा विषप्रयोग करके नदी में बहा दिए पांडू पुत्र भीमसेन के प्राणों की रक्षा राधेय ने की थी लेकिन उसी भीमसेन ने राधेय को अपमानित करके अंत:पुर से निकाल दिया था। तब राधेय का आक्रोश बोल पड़ा था, "सूतपुत्र को अंत:पुर से निकालना कृतघ्नता नहीं है, किंतु एक प्राणरक्षक को अपने कक्ष से अपमानित करके हटाना अवश्य ही कृतघ्नता है।"[72] राधेय की बाल्य जीवन की घटनाओं में अपमान जनक आक्रोश और जातीय कुंठा ने स्थायी क्रोध का रूप धारण किया था। ऐसी स्थितियों में राधेय को सम्मान जनक स्थान देनेवाला धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन करीबी बनता गया। कौरव-पांडवों के बीच टकराहट की स्थिति निरंतर बनी रहती।

आचार्य परशुराम विद्या और प्रतिशोध के लिए एक उत्तराधिकारी ब्राह्मण की खोज में थे। राधेय ने निर्णय किया कि वह ब्राह्मण बनकर परशुराम के पास विद्या ग्रहण करने जाएँगे। उन्होंने अपनी योजना माला और कौशिक आश्रम के मित्र श्रद्धेय सुव्रती को बताई। दोनों ने इसे धोखा और अपराध माना। सुव्रती ने इसे अलाभकर मानकर कहा, "भ्रष्ट साधन से प्राप्त की हुई कोई वस्तु कभी लाभकर नहीं होती।"[73] किंतु सुव्रती ने राधेय को आचार्य परशुराम के पास जाने और अपने आपको ब्राह्मण सिद्ध करने के लिए पूर्ण सहयोग दिया। राधेय को आर्ष विद्या का ज्ञान दिया। राधेय को विदा करते हुए उसकी समस्या का समाधान

---

[71] मनु शर्मा, कर्ण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ. 92

[72] वहीं, पृ. 70-71

[73] मनु शर्मा, कर्ण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ. 112

करते हुए कहा, “अपने अंत:करण से पूछना...अंत:करण से बड़ा कोई गुरू नहीं, विवेक से बड़ा कोई ज्ञान नहीं और संतोष से बड़ा कोई धन नहीं।”[74]

राधेय जब परशुराम आश्रम (महेंद्र पर्वत) की ओर चला तब उसने अपना पड़ाव गंगी गाँव में डाला जो आश्रम के निकट का गाँव था। राधेय ने अनुभव किया कि सामान्य लोगों की चिंतन में ब्राह्मणों (परशुराम) को प्रतिहिंसावादी नहीं होना चाहिए। उसी गाँव के एक मांत्रिक ब्राह्मण ने भविष्यवाणी करते हुए कहा कि राधेय राजा बनेगा। राधेय ने भी वचन देते हुए कहा कि, “यदि मैं राजा हो जाऊँगा तो कोई भी ब्राह्मण याचक जो कुछ माँगेगा, उसे अवश्य दूँगा।''[75] परशुराम के प्रति और ब्रह्मास्त्र पाने के लिए आने वालों के प्रति परशुराम आश्रम के ब्रह्मचारियों में गहरी वितुष्णा थी। वास्तव में परशुराम को ब्राह्मण से कई अधिक क्षत्रिय के प्रति प्रतिहिंसा रखनेवाले की खोज थी। राधेय में उसने योग्यता और प्रतिशोध के प्रमाण पाए। उसकी लगन और अभ्यास ने परशुराम को प्रभावित किया। परशुराम ने उसे शब्दवेधी, कपिश, ब्रह्मास्त्र आदि सभी विद्याओं की शिक्षा दी। एक समय शब्दवेधी बाण चलाने पर अनजाने में गो हत्या हो गई थी। राधेय ने मेहनत, ज्ञान और कर्तव्यनिष्ठा से अल्पावधि में ही सारी विद्या ग्रहण कर ली। एक बार परशुराम वसुषेण की जांघ पर अपना सिर रखकर सोए थे। अपनी कर्तव्य निष्ठा के कारण वसुषेण ने जांघ के नीचे से कीटक द्वारा निरंतर काटने पर भी अपनी जांघ गुरूदेव परशुराम की नींद न टूटे इस कारण स्थिर रखी। यही स्थिति उसके ब्राह्मण न होने और क्षत्रिय होने का प्रमाण बना। परशुराम ने उसे शापित करते हुए कहा, “जा, जिस शत्रु को पराजित करने के लिए तुमने मेरी इतनी सेवा की, अभ्यास और साधना की वह एक भी तेरे काम नहीं आएगी। तू अवसर पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग भूल जाएगा।”[76] राधेय ने गुरू परशुराम को समझाने की कोशिश की लेकिन उनका प्रतिशोध निरंतर बढ़ता गया। आश्रम त्यागते समय राधेय ने कहा, “काल मेरी कर्तव्यनिष्ठा

---

[74] वहीं, पृ. 121

[75] वहीं, पृ. 127

[76] मनु शर्मा, कर्ण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ. 153

की निश्चित रूप से सराहना करेगा। और आपकी प्रतिहिंसा के लिए उसके पास घृणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा।"[77] वापस लौटने पर राधेय ने इसकी चर्चा सुव्रती से की। उन्होंने राधेय का मनोबल बढ़ाने के लिए कहा, "मनुष्य को जीवन क्रम से निरपेक्ष होना चाहिए। जन्म, जरा, मृत्यु को वैसे ही निर्लिप्त देखना चाहिए जैसे सरिता के प्रवाह को तटवर्ती चट्टानें देखती है।"[78]

ग्राम में प्रवेश करते ही राधेय ने माला को बलात उठा ले जानेवाले हस्तिनापुर के सेनापति के पुत्र को परास्त कर माला को छुड़ाया। गाँववालों को अपनी मूक दर्शिता के लिए कोसा परंतु माँ राधा के मृत्यु की सूचना मिलते ही राधेय द्रवित हो उठा। दुर्योधन द्वारा हस्तिनापुर आमंत्रित करने पर भी हस्तिनापुर नहीं गया। इसीलिए दुर्योधन स्वयं मिलने आया। दुर्योधन के कारण कौरवों से निकटता बढ़ती गई। किंतु अर्जुन की साधना और गुरू द्रोण के प्रति समर्पण भाव और कुंती के ममत्व से प्रभावित भी था। कौरव-पांडवों शस्त्र शिक्षा के प्रदर्शन के लिए उनके गुरू द्रोण और कृपाचार्य की सलाह पर विराट शस्त्र प्रतियोगिता का आयोजन किया था। सभी छात्रों ने अपने करतब दिखाए। अर्जुन की धनुर्विद्या पर सभी मुग्ध थे। भीम द्वारा अर्जुन की बराबरी करने के लिए ललकारने पर राधेय आगे बढ़ा। किंतु आचार्य द्रोण ने राधेय राजकुमार न होने से अनुमति नहीं दी। राधेय ने अर्जुन को ललकारा, "मैं भले ही सूतपुत्र होऊँ, पर मेरी भुजाओं की ओर देखो, मेरे कौशल और करतब की ओर देखो। मेरी धनुर्विद्या का परीक्षण करो। यह जाति की नहीं वरन् शस्त्रविद्या की प्रतियोगिता है।"[79] दुर्योधन ने राधेय का पक्ष लेते हुए उसे अंगराज घोषित किया। अपने कटे अँगूठे से रक्ततिलक करते हुए दुर्योधन ने कहा, "अंगराज तुम्हारी धमनियों में चाहे जो भी रक्त प्रवाहित हो, पर तुम्हारे मस्तक पर एक क्षत्रिय राजकुमार रक्ततिलक

---

[77] वहीं, पृ. 155

[78] वहीं, पृ. 160

[79] मनु शर्मा, कर्ण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ. 186

करता है।"[80] राधेय दुर्योधन के उपकार के तले दब गया। वह राजा बन गया परंतु प्रतियोगिता में हिस्सा नहीं ले पाया।

दुर्योधन के स्नेह, सम्मान, अपनत्व और उपकार के कारण राधेय इस प्रकार दब गया कि दुर्योधन के कार्य संबंधी उचित-अनुचित का निर्णय नहीं दे पाया और उनकी पांडव विरोधी यंत्रणाओं में फँसता गया। पांडवों को वारणावत भेजने और उन्हें लाक्षागृह में जला डालने में वह स्वयं तो भागी बना साथ ही उसने माला को भी सम्मिलित कर लिया। राधेय स्वंय कहते हैं कि, "मैं अनुभव कर रहा था कि मुझ में दो व्यक्ति जी रहे हैं। एक कृतज्ञता के दलदल में फँसा हुआ उपकार के बोझ से दबा-दबा और दूसरा गंगा की धारा में चट्टान की तरह अड़िग, भगवान भास्कर के समक्ष प्रणत, निर्भय, निर्द्वंद्व और निष्कलुष। इन दोनों व्यक्तियों में संतुलन स्थापित करने की मैं असफल चेष्टा करता रहा।"[81] हस्तिनापुर की प्रजा की दृष्टि में वारणावत में शिवम् महल का जलना और पांडवों का नष्ट होना मात्र कौरवों का षड्यंत्र था। विदूर द्वारा पांडवों को तिलांजलि न देने के कारण दुर्योधन मामा शकुनि पांडवों के जीवित होने की शंका पाले हुए थे।

एक दिन गांगी गाँव के मांत्रिक ब्राह्मण ने आकर कुंडल लटके सुंदर कानों के आधार पर राधेय का नामकरण 'कर्ण' कर दिया। कुछ दिन पश्चात द्रुपद कन्या द्रौपदी के स्वयंवर की सूचना सभी राजाओं को दे दी गई थी। वस्तुत: कर्ण की स्वयंवर में जाने की अनिच्छा थी किंतु दुर्योधन के आग्रह पर वह स्वयंवर में उपस्थित हुए। स्वयंवर के कठोर धनुर्विद्या की प्रतियोगिता आयोजित गई थी जिसमें सफलता के निकट पहुँचनेवाला वह पहला व्यक्ति था परंतु द्रौपदी ने "मैं सूतपुत्र का वरण नहीं करूँगी।"[82] कहकर भरी सभा में कर्ण का अपमान कर दिया। उसी समय कर्ण ने संकल्प किया कि द्रौपदी को भी ऐसी ही सभा में अपमानित करूँगा। फिर ब्राह्मण भेस में पधारे अर्जुन ने लक्ष्यभेद करके द्रौपदी के साथ स्वयंवर रचा

---

[80] वहीं, पृ. 189

[81] वहीं, पृ. 210

[82] मनु शर्मा, कर्ण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ. 241

लिया। वारणावत षड्यंत्र विफल होने और पांडवों के जीवित होने के कारण कर्ण अपने आपको कलंकित मानते और व्यग्र रहते थे। कर्ण स्वयं की अनुभूति प्रकट करते हुए कहते हैं कि, "अन्याय सहनेवाले से अन्याय करनेवाला अधिक व्यग्र और दु:खी होता है।"[83] कर्ण ने दुर्योधन की निकटता के कारण हस्तिनापुर मंत्री परिषद में पांडवों की हस्तिनापुर वापसी का विरोध भी किया था। लेकिन वह उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। माला ने भी कर्ण के इस पांडव विरोधी बातों का विरोध करते हुए समझाया कि, "इसलिए गद्दी नहीं दी कि रंक को राजा बनाने के पीछे कोई परोपकार की भावना थी, वरन् इसमें भी उनका स्वार्थ था कि तुम राजा बनकर उनके शत्रुओं का विनाश करो।"[84]

कर्ण के पालित पिता अधिरथ की मृत्यु के पश्चात जब दुर्योधन मिलने आते हैं तो हस्तिनापुर विभाजन की सूचना देते हैं। पांडवों के लिए खांडववन का हिस्सा दे दिया था। कुछ दिनों बाद कुंती भी मिलने आती है। उसमें एक ममता-सा वात्सल्य था। दुर्योधन बहन दु:शला कर्ण से प्रेम करती थी लेकिन गांधारी के विरोध और समाज की लक्ष्मण रेखा के चलते दु:शला ने कर्ण को अपना बड़ा भाई मान लिया था। कर्ण के राज्य में दो वणिक पुत्रों को आश्रम में प्रवेश न देने के आश्रम के फैसले के कारण संकटजन्य स्थिति बन गई। कर्ण भी वणिक पुत्रों को प्रवेश मिलने के पक्ष में थे लेकिन कर्ण राजा होने के बावजूद वणिक पुत्रों को आश्रम में प्रवेश नहीं दिला पाए। इस समस्या का समाधान उन्होंने वणिक पुत्रों के प्रति आत्मीयता जताकर किया। महल पारिचारिकाओं द्वारा कर्ण को माला से पुत्र प्राप्ति की सूचना मिली। जिसका नामकरण पुरोहित ने वृषसेन किया। पांडवों द्वारा राजसूय यज्ञ के आमंत्रण के पश्चात कर्ण वहाँ पहुँचे लेकिन वहाँ पुरोहित धौम्य द्वारा अपने जातिगत अपमान को सहना पड़ा। कर्ण प्रात: काल हस्तिनापुर निकल आए। पीछे से लौटनेवाले कौरवों की स्थिति अत्यंत प्रतिशोधित थी क्योंकि द्रौपदी ने अंधे की संतान अंधी होती है

[83] वहीं, पृ. 248
[84] वहीं, पृ. 251

कहकर दुर्योधन का अपमान किया था। कर्ण ने दुर्योधन को सहारा दिया और प्रतिशोध के लिए सहायता करने की बात कही। कुछ दिनों पश्चात महाराज धृतराष्ट्र को अपने पक्ष में करके युधिष्ठिर को चौरस खेल का आमंत्रण भेजकर बुलाया गया। फिर शकुनि मामा ने छल करके युधिष्ठिर को अपनी पत्नी समेत सबकुछ दाँव पर लगाने के लिए उकसाया और कौरव पक्षों को जितवाया। द्रौपदी को बलात पकड़कर लाने और निर्वस्त्र करने के लिए दु:शासन को उकसाने में कर्ण ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। लेकिन द्रौपदी के रूद्र रूप के कारण और घटित अपशकून के कारण धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को हारी हुई बाजी वापस लौट दी। कर्ण को अपनी प्रतिशोध की भावना पर पश्चाताप होने लगा और वे वापस लौट आए। फिर दुर्योधन और शकुनि ने युधिष्ठिर को और एक बाजी खेलने के लिए तैयार किया जिसमें पांडवों को हराकर बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास के लिए भेज दिया।

समय आगे बढ़ता रहा। पांडवों की अज्ञातवास की अवधि के कगार पर विराट सेनापति कीचक वध की सूचना और पांडवों के विराट में होने की शंका को लेकर दुर्योधन आया। कौरवसमेत कर्ण भी विराट युद्ध में सम्मिलित हुए लेकिन अर्जुन से अपमानजनक हार हुई। पितामह भीष्म, ज्योतिष सुवर्चा, विदूर अज्ञातवास की अवधि समाप्त होने की बात स्वीकार करते थे लेकिन कौरव इसे न मानकर पांडवों को फिर से वनवास पर भेजना चाहते थे। पांडव संधि चाहते थे जबकि कौरव इसके लिए तैयार नहीं थे। पहली असफल संधि वार्ताओं के पश्चात् द्वारकाधिश कृष्ण दूत बनकर संधि-वार्ता करने हस्तिनापुर आए। लेकिन वह संधि प्रस्ताव भी कौरवों ने अस्वीकार किया। पांडव पाँच गाँव पर भी राजी थे लेकिन दुर्योधन वह भी देने के लिए तैयार नहीं थे। दुर्योधन दूत बनकर आए कृष्ण को बंदी बनाना चाहते थे लेकिन असफल हो गए। कर्ण पर कृष्ण को पकड़ने की ज़िम्मेदारी सौंपी तब कृष्ण ने कर्ण को सूतपुत्र न होकर सूर्यपुत्र और पांडवों के बड़े भाई होने के रहस्य से अवगत कराया। एक दिन प्रात:काल समय कर्ण-कुंती की भेंट गंगातट पर होती है और वह अपने पुत्रों के लिए अभयदान माँगती है। कर्ण अर्जुन छोड़कर चारों पांडवों को अभयदान देते हैं।

साथ ही रहस्य को रहस्य बनाए रखने का वचन लेते हैं। एक दिन ऐसे ही प्रात:काल में आकर ब्राह्मण रूपधारी इंद्र ने कर्ण से कवच कुंडल दान में प्राप्त कर लिये। परंतु वरदान स्वरूप अमोघ शक्ति का एक बार प्रयोग करने का आशीर्वाद दिया। कर्ण के कवच कुंडल चले जाने से दुर्योधन दु:खी होता है। कौरव-पांडव युद्ध में कौरव पक्ष के सेनापति पितामह भीष्म को बनाया जाता है। पितामह पर नाराज़ कर्ण ने पितामह के रहते युद्ध क्षेत्र में प्रवेश न करने का संकल्प किया। इसी समय खांडववन में अपना परिवार खोए अग्रसेन अर्जुन से प्रतिशोध लेने के लिए महामृत्यु बाण कर्ण को देते हैं। युद्ध के दसवें दिन पितामह शरशय्या पर चले जाते हैं। युद्ध विराम के बाद जब कर्ण पितामह से मिलने चले जाते हैं तब कृष्ण कर्ण की योग्यता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, “यदि कर्ण में हठ और क्रोध न होता तो शायद आर्यावर्त का यह सबसे यशस्वी व्यक्ति होता।”[85] प्रतिक्रिया स्वरूप कर्ण की सफाई देते हुए पितामह कहते हैं, “इसमें इसका क्या दोष है.....एक उपेक्षित बाल के सामान्य विकास की आशा करना व्यर्थ है।”[86] एक दिन युद्धभूमि पर भीमपुत्र घटोत्कच पर अमोघ शक्ति का प्रयोग करते हैं। आचार्य द्रोण की मृत्यु के पश्चात कर्ण सेनापति बनाया जाता है और उसके रथ के सारथी शल्य को बनाया जाता है। रात्रि के स्वप्न दृश्य में कर्ण महसूस करते हैं कि अनीति से अर्जुन पुत्र अभिमन्यू को मारा गया। और अर्जुन को मारकर द्रौपदी को विधवा बनाने के संकल्प लिए मृत्युबाण को देखते रहते हैं।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि लेखक मनु शर्मा ने प्रागैतिहासिक पात्र कर्ण को आधुनिक सामाजिक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण परंतु शापित अंग ‘दलित’ समाज का प्रातिनिधिक पात्र बनाकर प्रस्तुत किया है। औपन्यासिक कर्ण की पीड़ा संपूर्ण दलित समाज की समष्टिगत पीड़ा है। योग्यताओं के बावजूद अधिकारों से वंचित रहना तथा सामाजिक उपेक्षा के कारण कर्ण के चरित्र में पाया जानेवाला विद्रोह दलितों के विद्रोह को मुखरित

---

[85] मनु शर्मा, कर्ण की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2010), पृ. 366

[86] वहीं, पृ. 366

करता है। कर्ण की आत्मकथा का प्रकाशन सन् 1978 में हुआ है। हिंदी में दलित साहित्य की स्थापना के पूर्व ही दलित विद्रोह को लेखक ने साहित्यिक रूप दिया है। इस दृष्टि से यह उपन्यास नितांत आधुनिक एवं प्रासंगिक है। वर्ण व्यवस्था पर आधारित सामाजिक व्यवस्था तथा शासक व पूँजीपतियों के अधिन शिक्षा व्यवस्था समाज का संतुलित विकास नहीं कर सकते, इस ओर भी लेखक ने संकेत किया है। औपन्यासिक मिथकीय कर्ण असंतुलित शैक्षिक व सामाजिक व्यवस्था के दुष्परिणामों को प्रतिध्वनित करता है। लेखक ने जाति आधारित व्यवस्था के कारण एक योग्य, संवेदनशील व्यक्ति का अध:पतन मिथकीय चरित्र की सहायता से चित्रित किया है।

IV) गांधारी की आत्मकथा :

मनु शर्मा द्वारा रचित 'गांधारी की आत्मकथा' प्रसिद्ध भारतीय पौराणिक स्त्री 'गांधारी' की जीवन गाथा पर आधारित सन् 2006 में प्रकाशित उपन्यास है। भारतीय पुरुष प्रधान संस्कृति में भारतीय स्त्री की व्यावहारिक परवशता के साथ चिंतन की स्वतंत्रता का श्वेत पक्ष संभाले अपने काल के साथ ही परवर्ती युग पर भी अपनी अमिट प्रतिमा स्थापित करनेवाली गांधारी के चरित्र की बारिकियों को सर्वांग में प्रस्तुत करने की कोशिश लेखक मनु शर्मा ने की है। गांधार नरेश सुबल की सबसे सुंदर राजकुमारी 'शुभा' गुण और कर्म से शुभ ही थी। माता-पिता के श्वेत प्रेम के साथ भाई शकुनि की काली छाया भी शुभा से चिपकी रही और निरंतर बढ़ती गई। एक बार शकुनि ने शुभा को पानी में डुबाने की कोशिश की लेकिन अपनी सतर्कता और दरबारी सिपाहियों की मदद से बच गई। शुभा ने शकुनि के करनी की चर्चा जब माँ से की तब माँ ने नागवंशी द्वैत्यांश की कथा सुनाते हुए समझाया, "जिसमें सबसे अधिक देवत्व रहता है, उसी का पीछा दानवत्व करता है।"[87] एक बार शकुनि ने नकली साँप शुभा के पर्यक के नीचे रखकर शुभा तथा अन्य सभी को भयभीत किया था जिसके परिणामस्वरूप उसे पिताजी सुबल ने कालकोठरी की सजा दी थी लेकिन शुभा के ही बंधु प्रेम ने उसे बचाया।

शुभा जब बड़ी हुई और प्रेमसुलभ भावनाओं ने जन्म लिया तब उसकी सुंदरता की चर्चा चारों ओर होने लगी। स्वयं शुभा पुरुषपुर के राजकुमार के सपने देख रही थी। पिताजी द्वारा उनके रिश्ते पर मुहर लगाए जाने पर शकुनि के ही दुरभिसंधि ने हस्तिनापुर के सेनापति भीष्म को गांधार देश पर सैन्यबल के साथ आक्रमण के दिखावे के लिए उकसाया और गांधार देश को अपने बचाव के रूप में अपनी प्रिय सुंदर राजकुमारी शुभा के भविष्य और सपनों की बलि देनी पड़ी। भीष्म उसे हस्तिनापुर के अंध पुत्र धृतराष्ट्र के लिए ले आए। आँखों में पुरुषपुर का राजकुमार छाया रहता था। उस ओर से दृष्टि फेरने के लिए ही शुभा ने

---

[87] मनु शर्मा, गांधारी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 50

अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली। अपनी इन स्थितियों पर गौर करते हुए गांधारी कहती है, "कैसी विडंबना थी। हृदय में कोई था और समय ने किसी को लगा दिया। पति कोई और होने जा रहा था तथा विवाह किसी और से होने जा रहा है। सारा नगर मेरी पातिव्रत्य की सराहना कर रहा था। मैं असत्य की ऐसी डोर से बाँध दी गई कि जीवन भर उसे तोड़ नहीं पाई। उसी लाचारी के संकल्प पर जीती रही। कालांतर में यही संकल्प मेरे चरित्र का अंग हो गया।"[88]

'गांधारी' यह नाम भी भीष्म द्वारा दिया हुआ संबोधन था। भीष्म ने ही उसके आँखों पर पट्टी बांधने को महिमामंडित किया था। भीष्म के गांधार पर आक्रमण के पीछे शुभा को रूद्र का मिला हुआ सौ पुत्रों के वरदान का अभिशाप था। जिसने उसके पुरुषपुर के सपनों को तोड़कर हस्तिनापुर के यथार्थ की धरातल पर ला दिया था। भीष्म के इस कार्य में शकुनि ने बड़ा योगदान दिया था। इसलिए गांधारी के साथ शकुनि भी हस्तिनापुर में दाखिल हुआ था। शकुनि ने अपने दुष्प्रभाव में धृतराष्ट्र को लिया। शकुनि के कारण धृतराष्ट्र में निराशा के बीज अंकुरित होने लगे थे। धृतराष्ट्र को अपने अंधेपन के कारण सिंहासन से दूर रहने का पहले से दु:ख था अब वह चरम पर पहुँच गया। "यदि मैं अंधा न होता तो हस्तिनापुर के सिंहासन पर आज मैं ही विराजमान होता, यह एक बात मेरे पति को सदा सालती रही। उन्होंने इसका जिक्र मुझसे भी कई बार किया था। मैं इधर-उधर की बातें कर सदा उनके मन को बहलाती रही। फिर भी उन्हें शांति नहीं मिलती। महत्वाकांक्षा का पश्चाताप महत्वाकांक्षा से अधिक घातक होता है। महत्वाकांक्षा केवल मन को विकृत करती है और उसका पश्चाताप पूरे व्यक्तित्व को।"[89] शकुनि के षड्यंत्र के कारण धृतराष्ट्र के मन में शासक बने पांडू और अन्य लोगों के प्रति द्वेषभाव जागृत हो गया। शकुनि की बढ़ती करतूतों के कारण भीष्म ने उन्हें वापस लौटने के लिए कहा लेकिन धृतराष्ट्र ने निजी सचिव

---

[88] मनु शर्मा, गांधारी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 82
[89] वहीं, पृ. 86

बनाकर शकुनि का स्थान सुरक्षित कर लिया। धृतराष्ट्र का अंधापन उनकी आँखों तक सीमित नहीं था। बल्कि उनकी वासनाओं पर भी उनका नियंत्रण नहीं था। गांधारी ने धृतराष्ट्र को बदलने की बहुत कोशिश की लेकिन प्रमदा-प्रमोद का नशा उनपर स्थायी रूप से संवार रहा। शकुनि के षड्यंत्र से महामात्य विदुर भी चिंतित रहने लगे। शकुनि का षड्यंत्र निरंतर तेज होता जा रहा था जिससे राजभवन की आपसी एकता में छेद पड़ा गया है। गांधारी कहती है, "जब भी मैं एकांत में होती और मुझे राजभवन को विभाजित करती दीवार और भी ऊँची होती दिखाई देती। उसपर मेरा भाई ईंट पर ईंट धरता मालूम होता।"[90] गांधारी की आँखों की पट्टी ने इसे और अधिक बढ़ावा दे दिया। हस्तिनापुर का सिंहासन व्यास द्वारा स्थापित नियोग से ही आगे बढ़ा था। पांडू के महाराजा होने के बाद उसके रोगी शरीर और शापग्रस्तता के कारण गांधारी के मन में शकुनि ने सत्ता की आस जगाई। परंतु कुंती ने नियोग द्वारा युधिष्ठिर को जन्म दिया जिससे गांधारी में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। जब गांधारी की गर्भ धारणा हुई तब कुंती पुन: एक बार इंद्र से नियोग स्थापित करके गर्भवती बनी हुई थी। कुंती की प्रसव पीड़ा से ईर्ष्याग्रस्त होकर गांधारी ने अपने पेट को प्रसुती की दृष्टि से सहलाया और उसका गर्भपात हो गया। लेकिन गर्भपात में गिरे हुए भ्रूणों को व्यास ने संरक्षित किया और उसके विकास की व्यवस्था की। कुंती ने भीम को जन्म दिया और कुछ दिनों बाद गांधारी का एक भ्रूण फलित हुआ जिसका नामकरण दुर्योधन किया गया। राजज्योतिषियों ने इसका भविष्य युद्धरत बताया। धीरे-धीरे सारे भ्रूण फलित हुए जिससे सौ पुत्रों का जन्म हुआ। कुंती द्वारा अर्जुन का जन्म और माद्री द्वारा नकुल और सहदेव का जन्म हुआ। धीरे-धीरे बच्चे बड़े होने लगे। भीम और दुर्योधन में ईर्ष्या भाव के कारण झगड़े हुआ करते। दुर्योधन की मित्रता सूतपुत्र कर्ण से हो गई थी। दुर्योधन की मित्रता ने कर्ण को अपनाकर उसे राजभवन में प्रवेश दे दिया था।

शकुनि ने पांडव और कौरवों के बीच बँटवारे की दीवार बना दी थी जिससे उनके

---

[90] मनु शर्मा, गांधारी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 99

बीच स्थापित वैमनस्य को दूर करके उन्हें शिक्षा देना कृपाचार्य के लिए संभव नहीं हो पा रहा था। इसीलिए भीष्म ने द्रोण को हस्तिनापुर के आचार्य के रूप में नियुक्त किया। कौरव और पांडवों में अर्जुन सबसे अधिक विद्यानुरागी था। एक बार धृतराष्ट्र गंगा नदी तट पर अंधेरे में अर्जुन के शब्दवेधी बाण का अभ्यास करते हुए पाते हैं और आचार्य द्रोण पर पक्षपात का आरोप लगाते हैं। जब दुर्योधन के साथ इसकी चर्चा करते हैं तो पाते हैं कि उसकी अध्ययन में न तो लगन है न ही अर्जुन जैसा विनय भाव। दुर्योधन ने ईर्ष्या भाव में एक दिन भीम को जहर देकर गंगा में बहा दिया था लेकिन सौभाग्य से भीम जीवित बचा। धृतराष्ट्र गांधारी से दुर्योधन की मानसिकता की चर्चा करते हुए कहते हैं कि, "दुर्योधन की इस मानसिकता के मूल में तुम्हारी वह ईर्ष्या है, जिससे वशीभूत होकर तुमने अपना गर्भपात करा लिया। विशेषज्ञों का कहना है कि गर्भस्थ शिशु पर माँ की मानसिकता का बहुत प्रभाव पड़ता है।"[91]

जेष्ठ पुत्र होने के कारण युधिष्ठिर को युवराज बनाया जाता है। लेकिन शकुनि के षड्यंत्र के कारण निराशा से ग्रसित होकर महाराज पांडु राजत्याग करके माद्री के साथ वन में चले गए और कुछ ही दिनों पश्चात उसकी मृत्यु हो गई। कुंती सती हो जाना चाहती थी लेकिन गांधारी ने उसे पुत्रों के प्रति अपने कर्तव्य को समझाया। युधिष्ठिर को युवराज भले ही बनाया गया हो लेकिन सम्मान नहीं दिया जाता था जिससे भीम क्रोधित हो उठते। युधिष्ठिर को बैठने के लिए आसन तक नहीं दिया जाता था। फिर भी कौरवों के प्रति द्वेष न धारण कर वे भीम को ही समझाते, "मन से बड़ी कोई शक्ति नहीं, संतोष से बड़ा कोई धन नहीं और धरती से बड़ा कोई आसन नहीं। सिंहासन भी आखिर उसी पर ठहरा है।"[92] शकुनि और दुर्योधन ने धृतराष्ट्र के मनोयोग से वारणावत महल रचकर उन्हें जलाकर मार डालने का षड्यंत्र रचा। जिसकी आशंका गांधारी को होकर भी वह परवशता में कुछ नहीं कर पाई।

---

[91] मनु शर्मा, गांधारी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 163
[92] वहीं, पृ. 188

वारणावत षड्यंत्र में पांडव बच गए और पांचाली स्वयंवर में विजयी होकर प्रकट हो गए। वारणावत षड्यंत्र से जनता कौरव विरोधी हो गई थी। पांडवों के पुनःजीवित होने के समाचार से उसे बल मिल रहा था। कौरवों की मानसिकता को अंकित करते हुए भीष्म गांधारी से कहते हैं, "तुम्हारे बेटे इस शाश्वत धारणा को भूल गए कि मनुष्य किसी और से नहीं, अपने कर्मों से मारा जाता है। आप उसे जलाते रहिए, विष देते रहिए, मनुष्य कभी नहीं मरेगा जब तक उसके कर्म उसके प्रतिकूल नहीं होंगे।"[93] भीष्म के कहने पर पांडवों को ससम्मान आमंत्रित किया गया और राज्य का बँटवारा करके उन्हें खांडववन का हिस्सा दे दिया गया। वहाँ उन्होंने खांडवप्रस्थ (इंद्रप्रस्थ) की स्थापना की। राजसूय यज्ञ का आयोजन किया। कौरव अपने साथ सलाह न करने से नाराज़ थे लेकिन उन्हें ससम्मान आमंत्रित करने और महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ सौंपने से अत्यंत खुश हो गए। इंद्रप्रस्थ देखते समय उसकी भासमान रचना के कारण दुर्योधन पानी में गिर गया उस पर उसे द्रौपदी द्वारा 'अंधे की संतान अंधी होती है' कहकर व्यंग्य किया गया जिससे वह तिलमिला उठा। उसी प्रतिशोध को लेकर कौरव वापस लौट आए। गांधारी ने शकुनि को इस बात को बढ़ावा न देने की बात कहती है, "प्रतिशोध किसी समस्या का अंत नहीं। वह स्वयं अंतहीन है। हम प्रतिशोध लेंगे, वे उसका प्रतिशोध लेंगे-और यह सिलसिला चलता रहेगा। घाव हरा का हरा रहेगा और गहरा होता जाएगा। इससे अच्छा है, क्षमा करना और भूल जाना।"[94]

शकुनि दुर्योधन द्वारा षड्यंत्र रचकर द्युत खेलने के लिए पांडवों को आमंत्रित करते हैं और शकुनि ने पासे फेंककर युधिष्ठिर का सबकुछ जीत लिया। युधिष्ठिर ने द्युत में अपने भाई समेत पत्नी द्रौपदी को भी हार दिया। दुःशासन द्वारा द्रौपदी का चीरहरण करने की कोशिश करना यह सब स्थितियाँ गांधारी अपनी परवशता में देखती रही। गांधारी दासी सुखदा से अपनी व्यथा प्रकट करती है, "नारी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है उसकी परवशता,

---

[93] मनु शर्मा, गांधारी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 219
[94] वहीं, पृ. 251

पिता की परवशता, पति की परवशता, पुत्र की परवशता, परिस्थितियों की परवशता, समाज की परवशता आदि से अंत तक परवशता। आग लगने जा रही है और मैं परवशता के बंधन में जकड़ी बैठी रहूँ। कुछ न कर सकूँ।"[95] फिर भी द्रौपदी की आर्त रुदन ने गांधारी का दिल पसीजा और धृतराष्ट्र को द्युत के परिणामों को नकारने के लिए मजबूर किया। युधिष्ठिर का सबकुछ लौटाया गया। लेकिन शकुनि ने हार न मानकर धृतराष्ट्र के जरिए युधिष्ठिर को पुन: द्युत का आमंत्रण भेजा। गांधारी का विरोध धरा का धरा रह गया। युधिष्ठिर द्युत में हार गए और बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास में रहना पड़ा। पांडव द्रौपदी समेत वनवास चले गए। कुंती महामात्य विदूर के पास रही। वनवास में भी द्वैतवन में दुर्योधन द्वारा पांडवों को अपमानित करने की चेष्टा की। गंधर्व से हुए युद्ध में दुर्योधन हार गए। तब पांडवों द्वारा उसके प्राणों की रक्षा की गई इसी से लज्जित होकर दुर्योधन ने प्रायोपवेश व्रत (मृत्यु तक अन्न त्याग) धारण किया लेकिन कुंती ने उसे स्नेह देकर उसका प्रायोपवेश व्रत छुड़वाया। तब गांधारी के चिंतन ने उसे झकझोरा, "मनुष्य किसी और से नहीं अपने कर्मों से अधिक परेशान होता है। अब मेरा चिंतन मुझे कोसने लेगा, तुमने इसके पुत्रों के साथ कैसा व्यवहार किया था और यह कितनी सहजता से तुम्हारे पुत्र की प्राणरक्षा के लिए तैयार हो गई। आत्मग्लानी में मैं पहले से ही डूबी जा रही थी, अब तो उसका प्रभाव सिर से ऊपर जाने लगा।"[96]

पांडवों के वनवास के पश्चात अज्ञातवास की अवधि भी लगभग समाप्त हो रही थी कि विराट के सेनापति कीचक की हत्या का समाचार आया। कीचक की मल्लयुद्ध में हत्या होने से भीम तथा सैरंध्री के रूप में द्रौपदी तथा अन्य पांडव विराट में होने की आशंका शकुनि और दुर्योधन के मन में निर्माण हो गई। भीष्म और राज्यज्योतिषियों द्वारा अज्ञातवास की अवधि समाप्त होने की बात स्वीकार करने पर भी आचार्य द्रोण समेत भीष्म के नेतृत्व में

---

[95] मनु शर्मा, गांधारी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 269-270

[96] वहीं, पृ. 285

दुर्योधन ने विराट पर आक्रमण की योजना बताई। इस लड़ाई में कर्ण, द्रोण समेत कौरवों को हार के साथ अर्जुन द्वारा संमोहनास्त्र का प्रयोग करके कपड़े उतरवाकर लज्जास्पद स्थिति में पहुँचाया गया। पांडवों को लेकर कौरवों में दो गुट बन गए। भीष्म, विदुर अवधि समाप्त होने के पक्ष में थे जबकि शकुनि, दुर्योधन इसे अस्वीकार रहे थे। पांडवों की ओर से कृष्ण संधि प्रस्ताव लेकर आए। कृष्ण ने भीष्म, धृतराष्ट्र, शकुनि, दुर्योधन, कर्ण से आत्मीयता के साथ भेंट की। गांधारी ने कृष्ण के बारे में बहुत सुना था जिससे वह स्वयं उससे मिलना चाहती थी। लेकिन सभ्यता और अहं की अदृश्य जंजीरों ने उसे रोका था। कृष्ण स्वयं गांधारी से मिलते हैं। गांधारी के चिंतन की निष्पक्षता और परवशता को इंगित करते हुए कहते हैं।, "यही तो आर्यावर्त का दुर्भाग्य है कि नारियाँ उपेक्षित है। आज उनकी वैचारिक अस्मिता को स्वीकारा नहीं जाता।"[97] कृष्ण ने संधि सभा में पांडवों का प्रस्ताव रखते हुए पांडवों के पक्ष में समर्थन देते हुए कौरवों को भी सुख और शांति के लिए उन्हें पांडवों का हिस्सा लौटाने की बात कही। अंत में कृष्ण ने सिर्फ पांच गाँवों पर संतुष्टि का प्रस्ताव रखा लेकिन इसे भी दुर्योधन ने अस्वीकार किया। गांधारी के समझाने पर भी दुर्योधन की हठधर्मिता ने इसे नकारा। स्थितियों पर भाष्य करते हुए गांधारी धृतराष्ट्र से कहती है, "भगवान ने आपको जन्म से ही अंधकार दिया। मैंने आपको इस स्थिति में देखकर अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली। आपके पुत्र-प्रेम ने भीतर की आँखों पर परदा डाल दिया। आप पुत्रों का अन्याय-अत्याचार देख न पाए। बराबर उन्हें प्रोत्साहित करते रहें। अब वे नियंत्रण से बाहर हो गए। रोग असाध्य हो चुका है।"[98]

पूरे आर्यावर्त को युद्ध का आमंत्रण भेजा गया। द्वारका में कृष्ण को न चुनकर सैन्य को चुनना भीष्म की दृष्टि में कौरवों की हार है। क्योंकि जिस ओर कृष्ण होंगे उसी ओर विजय होगी यह उनकी दृढ़ धारणा थी। धृतराष्ट्र ने अपनी हार को बचाने और कौरवों की

---

[97] मनु शर्मा, गांधारी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 315
[98] मनु शर्मा, गांधारी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 323

रक्षा के लिए संजय को दूत बनाकर भेजा लेकिन वह सफल नहीं हो पाए। व्यास जी ने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान कर धृतराष्ट्र गांधारी को युद्ध स्थितियों से अवगत कराने की सुविधा उपलब्ध कराई। संजय युद्ध भूमि की स्थितियों से धृतराष्ट्र-गांधारी को अवगत कराते गए। धृतराष्ट्र-गांधारी मन में आकांक्षाएँ लिये दुर्योधन के विजय की कामना करते रहे। पहले दिन के युद्ध को छोड़कर हर दिन पांडव हावी होते गए। युद्धभूमि दोनों ओर के वीरों को खो रही थी। एक दिन कृष्ण ने छल से द्रौपदी के जरिए आचार्य द्रोण से भी विजय का आशीर्वाद छिन लिया। भीष्म, द्रोण, अभिमन्यू, कर्ण सब मारे गए। भीम ने गांधारी के सौ पुत्रों को मार दिया। जयद्रथ का वध हुआ। अंत में पांडवों की जय हुई। इन स्थितियों को महसूस करते हुए गांधारी सोचती है, “विपत्ति की अंतिम परिधि पर व्यक्ति या तो टूट जताता है या निर्दय हो जाता है। यह निर्दयता उसकी अपने प्रति भी हो सकती है। फिर अब तो मैं इसमें विश्वास करने लगी थी कि जो होना है, वही हो रहा है।”[99] पांडव विजयी होकर हस्तिनापुर लौटे। धृतराष्ट्र के मन में अभी भी भीम के प्रति क्रोध था। उन्होंने भीम को छाती से लगाकर मारने की योजना बनाई लेकिन कृष्ण की सतर्कता से भीम बच गए और लौह प्रतिमा धृतराष्ट्र आलिंगन से चरमरा गई। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ। कृष्ण की दिव्य छबी गांधारी के मन में बन गई थी। इसीलिए उसने अपने सौ पुत्रों से मिलने की इच्छा कृष्ण के सम्मुख प्रकट की। कृष्ण उसे रणभूमि ले गए और अपनी अंतर्रात्मा से अपने पुत्रों को देखने के लिए कहा। गांधारी पुत्रों के शवों को महसूस करके व्याकुल हो गई। उसने अनुभव किया कि कृष्ण के छल के कारण ही पांडव जीत पाए। अत: व्याकुल अवस्था में उसने कृष्ण को वंश के विनाश और संताप सहते अकेले बचे रहने का शाप दे दिया।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि लेखक मनु शर्मा ने औपन्यासिक गांधारी के माध्यम से सामाजिक परंपराओं व मान्यताओं में बंधी स्त्री की छटपटाहट यहाँ चित्रित की है। आधुनिक परवश स्त्री की पीड़ा यहाँ मिथकीय गांधारी के रूप में प्रस्तुत होती है। साथ ही

---

[99] वहीं, पृ. 371

पुरुष प्रधान संस्कृति में दो पाटों के बीच पिसनेवाली स्त्री के मानसिक द्वंद्व को मुखरित किया है। न्याय और अन्याय के बीच की रेखा पर चलने की कोशिश करती हुई गांधारी परवशता के कारण क्रियामान न होकर चिंतनप्रधान बनी रही लेकिन उसके चिंतन ने उसे मात्र पश्चाताप और आँसू दिए। लेखक ने गांधारी के माध्यम से स्त्री की युगातीत जीवन गाथा को प्रकट किया है।

V) द्रौपदी की आत्मकथा:

भारतीय पुरुष प्रधान संस्कृति की 'सती' नारी की परिभाषा को परिवर्तित करनेवाली स्त्री 'द्रौपदी' वर्गप्रधान पात्र न होकर अपनी विशिष्टता से अजरामर हुआ स्त्री पात्र है। यह कलेवर में छोटा लेकिन अपने कथ्य में महान उपन्यास है। लेखक ने द्रौपदी को आधुनिक स्वयंभू स्त्री के मिथक के रूप में प्रस्तुत किया है। 'द्रौपदी की आत्मकथा' उपन्यास आत्मकथनपरक एवं पूर्व दीप्ति शैली में लिखा हुआ है। उपन्यास में द्रौपदी अपने विगत जीवन की स्मृति सदृश्य प्रसंग कथन करती है। द्रौपदी का रंग सांवला होने के कारण बचपन में पिताजी उसे 'कृष्णा' नाम से संबोधित करते थे। एक दिन जब वह पुष्करिणी के जल में खेलने के लिए मचल रही थी तभी याज ऋषि के आगमन से उसका और एक नाम सामने आ जाता है-'यज्ञसेनी' जो उसके जन्म रहस्य से जुड़ा था। यज्ञसेनी का अर्थ है-'यज्ञ से उत्पन्न'। द्रौपदी के जन्म के पीछे का रहस्य उनके पिता का प्रतिशोध था। जो अपने अपमान का बदला गुरू द्रोण से लेना चाहते थे। गुरू द्रोण ने भी अपने अपमान का बदला लेने के लिए ही द्रौपदी के पिता राजा द्रुपद को अपने शिष्य अर्जुन के जरिए बंदी बनाया था। राजा द्रुपद को अपना आधा राज्य चले जाने का उतना दु:ख नहीं था जितना द्रोण द्वारा किए गए अपमान का था। वह इसी अपमान का बदला लेना चाहते थे। नि:संतान द्रुपद राजा को ऐसे पुत्र की आवश्यकता थी जो द्रोण का सिर काटकर ला सके। पुत्र प्राप्ति की आशा लेकर राजा द्रुपद उपयाज ऋषि के पास पहुँचे। उपयाज ऋषि ने द्रुपद को समझाते हुए कहा कि, "कभी तू ने सोचा है कि मैल से मैल धोई नहीं जाती। घृणा से घृणा समाप्त नहीं होती।.....मेरे विचार से तो द्रोण द्वारा किए गए अपमान का सही बदला यही होगा कि तू उसका सम्मान कर।"[100] किंतु राजा का मन परिवर्तित नहीं हुआ। वे याज ऋषि के पास गए और उनसे उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ संपन्न कराया। जिससे द्रुपद राजा को धृष्टद्युम्न नामक पुत्र और द्रौपदी नामक पुत्री प्राप्त हुई। राजा द्रुपद अपने अपमान का बदला लेने के लिए एक अलग प्रकार

---

[100] मनु शर्मा, द्रौपदी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 27

की योजना बनाना चाहते थे। अर्जुन जो गुरू द्रोण का प्रिय शिष्य और श्रेष्ठ धनुर्धर है उसे ही गुरू द्रोण के विरूद्ध खड़ा करना चाहते थे। उसी दौरान पांडवों के लाक्षागृह में भस्म होने की खबरे प्रकट हुई लेकिन गुप्तचरों की जानकारी के अनुसार पांडवों के जीवित होने की पुष्टी भी होती थी। राजा द्रुपद ने अपने पुत्र की सहायता से अपनी पुत्री जो अनिंद्य सुंदरी थी उसके स्वयंवर की योजना बनाई जिसमें धनुर्विद्या पर आधारित कठिन परीक्षा रखी जिसका उद्देश्य शायद यही था कि सिर्फ अर्जुन ही इसका भेद कर सके। स्वयंवर में उपस्थित रहने का आमंत्रण सभी राजाओं को दिया गया था। दुर्योधन से लेकर शिशुपाल, शल्य तक सभी लोग बुरी तरह असफल रहें। कर्ण सफल हो जाता इससे पहले द्रौपदी ने उसे सूतपुत्र होने से मना कर दिया। योग्यता के बावजूद नकारे जाने से वह अपने आपको अपमानित महसूस करता रहा। क्षत्रियों के परास्त हो जाने के बाद ब्राह्मणों को मौका दिया गया। ब्राह्मण भिक्षु भेस में आया हुआ अर्जुन लक्ष्यभेद करके द्रौपदी के साथ स्वयंवर रचा लेता है। द्रौपदी पाँच पांडवों से विवाह कर लेती है। विवाह के पश्चात वह अपने पाँच पतियों के साथ पांचाल प्रदेश में ही रहती थी। विवाह के बाद पांडवों के जीवित होने का भेद खुल जाता है। जिससे चारों ओर खुशी का माहौल हो जाता है। राजा द्रुपद अत्यधिक आनंदित होते हैं कि उन्हें उनकी मनीषा के अनुसार अर्जुन दामाद के रूप में प्राप्त हुआ।

धृतराष्ट्र द्वारा पांडवों को बँटवारे का संदेश भेजते हैं। कौरवों के लिए और पांडवों के बीच राज्य बाँटकर दोनों के लिए अलग-अलग राजधानी का प्रस्ताव रखते हैं। पांडवों ने अपनी नई राजधानी इंद्रप्रस्थ में दिव्य महल का निर्माण किया है। राजसूय यज्ञ करके युधिष्ठिर को सम्राट घोषित किया गया। जिससे कौरवों को ईर्ष्या होने लगी। एक दिन दुर्योधन इंद्रप्रस्थ का महल देखते समय धोखा खाकर पानी में गिर पड़ा। तब द्रौपदी ने अहं में मज़ाक उड़ाते हुए कहा कि, “अंधे की संतान अंधी ही होगी ना।”[101] जिससे तिलमिलाकर दुर्योधन ने अपने अपमान का बदला लेने की प्रतिज्ञा ली। कौरवों में पहले ही पांडवों के प्रति ईर्ष्या थी

---

[101] मनु शर्मा, द्रौपदी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 56

और अब बदला लेने की भावना भी बलवती हो गई थी। कौरवों ने एक षडयंत्र रचाकार विदुर के हाथों युधिष्ठिर को चौरस खेलने का निमंत्रण भेजा। युधिष्ठिर चौरस खेलने के बड़े शौकीन थे। उन्होंने वह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। कौरवों की चाल में फंसकर युधिष्ठिर अपना सबकुछ हार जाते हैं। यहाँ तक की वे अपनी पत्नी द्रौपदी को भी दाँव पर लगा देते हैं और उसे भी हार जाते हैं। परिणामस्वरूप द्रौपदी को दासी संबोधित करके कौरवों द्वारा दरबार में बुलाया जाता है। जब वह दरबार में उपस्थित नहीं होती तब दुर्योधन के कहने पर दु:शासन द्वारा उसे ज़बरदस्ती दरबार में लाया जाता है। द्रौपदी दरबार में अपने बचाव के लिए नीति, न्याय के प्रश्न उपस्थित करती हैं। लेकिन उसके प्रश्नों का जवाब कोई नहीं दे पाता। सभी दरबारी उसके तर्कों को तो स्वीकार करते थे। उसपर अन्याय हो रहा है इसे मानते थे लेकिन दुर्योधन के विरूद्ध द्रौपदी के समर्थन में कोई भी प्रतिक्रिया देने को तैयार नहीं था। सब मन मसोसकर कर द्रौपदी पर हो रहे अन्याय को देख रहे थे। दु:शासन द्रौपदी का चीर हरण करने की कोशिश करता है पर वह नाकामयाब हो जाता है।

द्रौपदी के इस कठिन समय में दुर्योधन के भाई विकर्ण ने उसके पक्ष का समर्थन किया, सभा को अन्याय का पक्ष छोड़ने की बात कही। द्रौपदी के रौद्र रूप ने, शेरनी सी दहाड़ ने, पांडवों की फुत्कार ने और विकर्ण के समर्थन ने धृतराष्ट्र को न्याय करने के लिए मजबूर किया जिसके तहत सभी पांडू पुत्रों को दास्य भाव से मुक्त किया गया। उनका राज्य उन्हें वापस प्राप्त हुआ परंतु कौरवों द्वारा पुन: चौरस का प्रस्ताव आने पर युधिष्ठिर पुन: चौरस खेलने के लिए उपस्थित हो जाते हैं। दुर्योधन के मामा शकुनि पहले ही तय कर लेते है कि खेल में हारनेवाले को बारह वर्ष वनवास और तेरहवाँ वर्ष अज्ञातवास में बिताना पड़ेगा। कौरवों के छल के परिणाम स्वरूप युधिष्ठिर चौरस में हार जाते हैं और शर्त के अनुसार सभी पांडवों को पत्नी द्रौपदी के साथ वनवास के लिए जाना पड़ता है। वनवास के दिन द्रौपदी के लिए कठिन थे। इसी से कौरवों के प्रति बदले की भावना दिन-प्रतिदिन बलवति हो गई। “बदल, बदला, बदला. हर क्षण सपने में भी मैं बदला लेने की बात सोचती थी। एक बात मैं

बड़ी ईमानदारी से कह देना चाहती हूँ कि मेरी बदला लेने की भावना इतनी प्रखर और मुखर न होती तो कदाचित महाभारत न होता।"[102] युधिष्ठिर और द्रौपदी दो भिन्न बिंदु थे एक संयमी, नीति को महत्व देनेवाला तो दूसरा बदले के लिए उतावली। इन दोनों के बीच बाकी पांडव कभी इस किनारे कभी उस किनारे होकर आगे बढ़ रहे थे। युधिष्ठिर के कारण ही द्रौपदी हरण करने पर भी जयद्रथ को जीवनदान मिला था। बारह वर्ष के वनवास के बाद एक वर्ष के अज्ञातवास के लिए विराटनगर के राजा के आश्रय में भेस बदलकर रहने लगे। भीम द्वारा कीचक वध और अर्जुन द्वारा कौरवों का पराभव करके पांडव अज्ञातवास समाप्ति के बाद अपने असली रूप में प्रकट होते हैं। राजा विराट की पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुनपुत्र अभिमन्यु से होता है।

अज्ञातवास की समाप्ति पर भी कौरवों ने पांडवों को राज्य नहीं दिया। युधिष्ठिर युद्ध टालने के लिए पाँच गाँव लेने के लिए भी तैयार हुए लेकिन द्रौपदी को अपने अपमान का बदला चाहिए था और कौरव पाँच गाँव भी देने के लिए तैयार नहीं हुए। परिणामत: महाभारत का युद्ध आरंभ हुआ। युद्धकाल में द्रौपदी कृष्ण की सहायता से छल करके महारथी भीष्म से पांडवों के लिए अभयदान प्राप्त कर लेती है। अंत में पांडवों की विजय होती है। द्रोण पुत्र अश्वत्थामा रात के अंधेरे में सेनापति धृष्टद्युम्न और पांडवपुत्रों की हत्या कर देता है। द्रौपदी पुन: बदला लेने को तत्पर होने लगती है लेकिन कृष्ण हिंसा तत्व के मिथ्यापन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "यदि प्रतिहिंसा से ही शांति मिलती तो इतनी हिंसा के बाद सर्वत्र शांति विराजती रहती, किंतु आज शांति कहाँ है? आर्यावर्त की धरती दहाड़ मारकर रो रही है। चीख रही है।"[103] इसी मनोवैज्ञानिक व शाश्वत सत्य के साथ उपन्यास की समाप्ति होती है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि 'द्रौपदी की आत्मकथा' उपन्यास में द्रौपदी

[102] मनु शर्मा, द्रौपदी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 79-80
[103] मनु शर्मा, द्रौपदी की आत्मकथा, (प्रभात प्रकाशन-दिल्ली, संस्करण 2011), पृ. 135-136

आधुनिक स्वाभिमानी स्त्री के मिथकीय रूप में उपस्थित होती है। औपन्यासिक द्रौपदी की 'सम्मान की समस्या' भारतीय स्त्रियों के सम्मान की समस्या को अधोरेखित करती है। आधुनिक भारतीय समाज में भी सामाजिक व विशेषत: पारिवारिक स्तर पर उनका घोर अपमान व शोषण होता है। साथ ही पारिवारिक हिंसा का शिकार भी होना पड़ता है। उसके न्याय पक्ष को मानते हुए भी उसके साथ न्याय नहीं होता। आधुनिक घोर पारिवारिक हिंसा के मिथक के रूप में द्रौपदी चीरहरण का प्रसंग उपन्यास में चित्रित हुआ है। स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार सामाजिक अध:पतन को दर्शाते हैं। द्रौपदी अपने न्याय के लिए कृष्ण की सहायता से स्वयं पांडवों का नेतृत्व करती है। यहाँ द्रौपदी आधुनिक स्त्रियों की अन्याय के विरूद्ध की लड़ाई को प्रासंगिकता प्रदान करती है।

VI) अभिशप्त कथा:

मनु शर्मा द्वारा सन् 1982 में लिखित 'अभिशप्त कथा' उपन्यास 'कच-देवयानी' की बहुचर्चित पौराणिक कथा पर आधारित है। राजसत्ता अपनी सत्ता के बचाव में कहाँ तक गिर सकती है इसे स्पष्ट करनेवाली पौराणिक कथा को आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में स्पष्ट करते हुए औपन्यासिक कथा की प्रासंगिकता को लेखक ने अधोरेखित किया है। उपन्यास की शुरुआत देव-असुर युद्ध के परिणामों से चिंतित देवाधिपति इंद्र की विचलित मानसिकता को प्रकट करनेवाले प्रसंग से होती है। इंद्र असमय अपने उद्यानों में चिंतित होकर घूम रहे हैं। युद्धजन्य स्थितियों पर चर्चा करने के लिए वह अपने पुत्र जयंत को बुलावा भेजता है लेकिन वह भी युद्ध की चिंताओं को लेकर देर रात तक जागता रहा। परिचारिका माधुरी बताती है अभी-अभी सो रहे हैं। जैसे ही वे जाग जाएँगे मैं उन्हें सूचित कर दूँगी। इंद्र की चिंताओं को दूर करने के पत्नी शची के सारे प्रयास खाली चले जाते है। इंद्र के उद्वेग ने उन्हें यज्ञ कर्म से भी च्यूत कर दिया था। जब जयंत उपस्थित हुआ तब युद्ध स्थितियों पर चिंताएँ प्रकट की गई। मंत्री परिषद से सलाह करके निर्णय लेने की बात जयंत ने कही तब राजनीति सिखाते हुए इंद्र कहते हैं, "जयंत! तू सचमुच बड़ा भोला है। तुझे शासन का अनुभव नहीं। किसी समस्या के समाधान की स्पष्ट रूपरेखा बनाए बिना मंत्रिपरिषद का आह्वान करने का तात्पर्य है- मंत्रियों के समक्ष विचारहीन असहायों की भाँति उपस्थित हो जाना। जानते हो ऐसी स्थितियों का क्या परिणाम होगा? लोग समझेंगे कि इंद्र शक्तिशून्य होने के साथ-साथ विचार शून्य भी हो गया है। मंत्री परिषद ऐसे इंद्र को कब तक स्वीकार करेगी।.....समझते हो, राजा की निष्कर्ष बुद्धि ही मंत्रिपरिषद के विचार का आधार होती है।"[104] हार के भय से इंद्र युद्ध टालने पर जोर दे रहे थे लेकिन कलंक न लग सके ऐसा कोई ठोस कारण दिखाई नहीं दे रहा था। इन्हीं स्थितियों में मंत्रिपरिषद आमंत्रित की गई जिसमें शची ने हार की सारी ज़िम्मेदारी देवों के गुरू बृहस्पति पर डाल दी। शची के

[104] मनु शर्मा, अभिशप्त कथा, (सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2010), पृ. 17

अनुसार असुर गुरू शुक्राचार्य के पास संजीवनी विद्या होने के कारण वे मरे हुए असुरों को पुन: जीवित कर देते हैं। युद्ध कौशल में देव निपुण होने के बाद भी संजीवनी विद्या के अभाव में वे पिछड़ रहे हैं। मंत्रिपरिषद में उपस्थित देवों ने इसी स्थिति पर उपाय खोजते हुए यहाँ तक कह डाला कि असुर आचार्य शुक्र को ही मार दे तो असुरों को पुन: संजीवनी नहीं मिलेगी लेकिन इंद्र ने प्रजापति को देवादर्श की बात कहते हुए कहा कि, "प्रजापति इसे अच्छी तरह समझ लो कि नख, दंतहीन होकर भी सिंह रह सकता है, विषहीन होने पर भी सर्प रह सकता है, पर आदर्शहीन होने पर देव सृष्टि नहीं रह सकती।"[105]

इंद्र के सुधर्मा परिषद की चर्चा में आचार्य शुक्र को मारने संबंधी बातें असुर गुप्तचरों द्वारा असुरों को प्राप्त होने की सूचना जयंत ने पिता को बताई जिससे वे और अधिक चिंतित हो गए। महामात्य द्वारा जयंत की परिचारिका माधुरी पर गुप्तचरी का आरोप लगाया और माधुरी के गायब होने से इस आरोप को प्रमाण भी मिला। इंद्र ने गुरू बृहस्पति और उनके पुत्र के साथ मिलकर इस पर चर्चा की। कच ने अपने पिता का दायित्व स्वीकारते हुए आचार्य शुक्र से संजीवनी विद्या सीखने का संकल्प किया और इंद्र ने इसमें संपूर्ण सहयोग का वचन दिया। कच ने अपने पिता की शंकाओं का निराकरण करते हुए अपनी योग्यता पर जोर देते हुए कहा, "कोई भी विद्या गुरू की कृपा से अधिक शिष्य की आस्था से सीखी जाती है। और मुझ में उसकी कमी नहीं है।"[106]

कच योजना पर कार्यवाही करते हुए जयंत को इंद्र की बीमारी की सूचना असुरराज वृषपर्वा को देने के लिए दूत बनाकर भेज दिया जाता है। वृषपर्वा की राजधानी में पहुँचकर जयंत बंदी देवों पर हो रहे अन्याय से द्रवित हो जाता है। जयंत को सुरों का महामात्य समझकर उसका अत्यंत सामान्य स्वागत होता है। परंतु उसके इंद्रपुत्र होने की जानकारी मिलने पर स्वयं वृषपर्वा उसकी आवभगत में उपस्थित हो जाते हैं। जयंत के सम्मुख गुप्तचर

---

[105] वहीं, पृ. 21

[106] मनु शर्मा, अभिशप्त कथा, (सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2010), पृ. 39-40

विभाग के अमात्य को गलत सूचना देने के लिए कठोर दंड दिया जाता है। जयंत पिता और देवाधिपति इंद्र के बीमारी की सूचना वृषपर्वा को देता है। जयंत के आगमन की सच्चाई जानने के लिए उसके चारों और सुंदरियों के माध्यम से वासनाओं को जाल बिछाया जाता है। माधुरी भी सेवा में उपस्थित हो जाती है। लेकिन जयंत अपने आपको वासनाओं से बचा लेता है। वृषपर्वा मंत्री परिषद से मंत्रणा करके युद्ध स्थगित कर देता है। जयंत वापस आकर इंद्र को यह भी सूचित करते हैं कि शर्मिष्ठा (वृषपर्वा की पुत्री) के साथ जलक्रीड़ा के प्रसंग को लेकर शुक्राचार्य नाराज़ होकर राजधानी छोड़कर अपने आश्रय चले गए। इंद्र की मंत्रिपरिषद में कच अपनी योजना को गुप्त रखते हुए अपने साथ जयंती (इंद्रपुत्री) को शुक्राचार्य के पास ले जाने की इच्छा प्रकट करता है। जयंती कच पर आसक्त होने से इसे सहर्ष स्वीकार कर लेती है। रास्ते में कच उसे अपनी योजना से अवगत करते हुए उसे शुक्राचार्य की सेवा में और स्वयं को शुक्राचार्य पुत्री देवयानी की सेवा में उपस्थित होने की बात कहते हैं। दोनों अजनबी के रूप में आश्रम में उपस्थित हो जाते हैं। कच अपना सही परिचय दे देता है। शुक्राचार्य की पत्नी शतपर्वा उसे देवयानी उद्यान के लिए उपयुक्त मानकर देवयानी के उद्यान में स्थान देती है। जयंती अपनी पहचान छिपाकर नर्तकी के रूप में उपस्थित होती है। और अपने पिता और बंधु असुरराज के यहाँ बंदी होने की झूठी कहानी सुनाती है। शुक्राचार्य जयंती के सौंदर्य और नृत्य पर आसक्त हो जाते है। वृषपर्वा भी शुक्राचार्य की नाराज़गी दूर करने के लिए शर्मिष्ठा को समर्पित करने के लिए शर्मिष्ठा को लेकर उपस्थित होते हैं। परंतु शुक्राचार्य जयंती की उपलब्धि के कारण वृषपर्वा की ओर अनदेखी करते हैं। वृषपर्वा शुक्राचार्य के कहने पर सारे बंदी देवों को छोड़ देता है। वृषपर्वा उसी रात जयंती को मारने की योजना बनाते हैं लेकिन कच द्वारा उसे आम्लक पर्वत भेज दिया जाता है। जहाँ इंद्रसेना योजनानुसार पहले से मौजूद थी। देवयानी भी कच पर आसक्त थी। दूसरे दिन जयंती के गायब होने से शुक्राचार्य क्रोधित होते हैं। कच और वृषपर्वा के एक-दूसरे पर जयंती को गायब होने संबंधी आरोप-प्रत्यारोप किए जाते हैं। कच को ही नर्तक के

खोज की ज़िम्मेदारी सौंप दी जाती है। कच वृषपर्वा के अमात्य प्रवज्ञा को साथ चलने के लिए कहते हैं लेकिन वृषपर्वा तैयार नहीं होते। वृषपर्वा शुक्राचार्य पुत्र मर्क और षंड को स्वर्ण मुद्राओं का लोभ दिखाकर कई को मारने की ज़िम्मेदारी सौंप देते हैं। कच ने अपने बुद्धि कौशल और छल करके अपने आपको बचाया। षड्यंत्र के असफल होने से वृषपर्वा भी चिंतित थे।

देवयानी अस्वस्थ थी और उसने शर्मिष्ठा को अपनी सेवा में उपस्थित रहने के लिए कहा। वस्तुत: वह राजकुमारी होते हुए भी वृषपर्वा की सत्ता स्वार्थ ने उसे शुक्राचार्य पुत्री देवयानी के समक्ष दासी बना दिया। स्थितियों पर भाष्य करते हुए देवयानी कहती है, "हर राजपुत्री की यही स्थिति होती है, शर्मिष्ठा! जन्म लेते ही उसका भविष्य राजसत्ता को सौंप दिया जाता है।"[107] शर्मिष्ठा अपनी विवशता को लेकर दु:खी होती है। अपने पिता के स्नेह को लेकर उसके मन में शंका उपस्थित होती है। देवयानी उसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहती है, "मेरे पिताजी तुम्हारे यहाँ से अप्रसन्न होकर लौट आए थे? केवल इसलिए न कि तुम्हारे साथ जलविहार करने नहीं दिया था।......और आज वृषपर्वा स्वयं तुम्हें लेकर आया है। समर्पित करने को तैयार है, क्योंकि वह जानता है कि आचार्य की अप्रसन्नता उसके अस्तित्व के लिए घातक हो सकती है।"[108] अपनी उपयोगिता को अस्मिता की तराजू में तोलकर स्वयं की स्थिति जानकर वह चिंतित हो उठती है। वह सोचती है,"नारी जब तक अपना समर्पण स्वयं करती है तब वह आत्मत्याग का चरम उत्कर्ष छू लेती है, किंतु जब वह समर्पण के लिए विवश की जाती है तब पतन की अतल गहराई से बाँध दी जाती है।"[109] देवयानी शर्मिष्ठा को कच को कुछ न करने के लिए धमकाती है। साथ ही नर्तकी की आँखों में कच के प्रति आकर्षण को पढ़कर नर्तकी को मारने के लिए कहती है। कच जब वापस लौटता है तो शुक्राचार्य को सूचित करता है कि वृषपर्वा की उपस्थिति से नर्तकी भयभीत है

---

[107] मनु शर्मा, अभिशप्त कथा, (सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2010), पृ.143
[108] मनु शर्मा, अभिशप्त कथा, (सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2010), पृ. 144-145
[109] वहीं, पृ. 145

और उनकी उपस्थिति में यहाँ नहीं आना चाहती। और नर्तकी के पिता ने उसे शुक्राचार्य को समर्पित कर दिया है। समर्पण की बात सुनकर शुक्राचार्य वासनाजन्य आनंदित होते हैं। देवयानी ने अतिथि कक्ष में असुरराज वृषपर्वा से मिलकर नर्तकी को मारने के लिए कहा। वृषपर्वा शर्मिष्ठा और अमात्य प्रवज्ञा को छोड़कर राजधानी चले गए। वृषपर्वा के चले जाने के पश्चात एक दिन नर्तकी उपस्थित हुई। साथ में वृषपर्वा के सैनिकों के दो शव थे। जयंती के कथनानुसार इन्हीं सैनिकों ने उसे मारने की कोशिश की थी। शर्मिष्ठा द्वारा देवयानी से चर्चा करते समय देवों के षड्यंत्र संबंधी अपने पिता की आशंका जताई। जिससे प्रभावित होकर देवयानी ने मरे हुए सैनिकों को शुक्राचार्य द्वारा जलाया। नर्तकी के समक्ष उसने हमला करने की बात स्वीकार कर ली।

आसक्त शर्मिष्ठा ने रात्रि के प्रहर में कच की कुटी में प्रवेश किया। शर्मिष्ठा के शारीरिक उष्मा से कच की नींद तो टूटी लेकिन उसने उसे जयंती समझकर उसके साथ संवाद स्थापित किया। शर्मिष्ठा के आसक्ति भाव और कच की सजगता ने जयंती के परिचय को स्वप्नदृष्य का नाम देकर धुँधला कर दिया। शर्मिष्ठा ने कच को अपने मोहपाश में बांधने की असफल कोशिश की। उसके बाद दो दिनों तक कच गायब रहा। देवयानी और नर्तकी दोनों चिंतातुर हुई। देवयानी ने शर्मिष्ठा से भेंट ली और असुरराज द्वारा कच के मारे जाने की शंका उपस्थित की। फिर आश्रम परिसर में कच की हत्या का कोलाहल बढ़ने लगा। कच का क्षतविक्षत शव लाया गया। देवयानी ने शुक्राचार्य से कच को जीवित करने के लिए हठ किया जबकि आचार्य पुत्र इसके विरोधी थे। कच को जीवित करने संबंधी वाद-विवाद हो गया। उसी रात्रि प्रवज्ञा के कक्ष में गुप्त मंत्रणा हुई। प्रहरी अतिबल और नर्तकी जयंती ने षड्यंत्र रचकर यंत्रणा में उपस्थित तीन असुरों को मार गिराया। शुक्राचार्य के सम्मुख नर्तकी, प्रहरी और प्रवज्ञा में आरोप-प्रत्यारोप हुए। देवयानी के दबाव के चलते शुक्राचार्य ने कच को संजीवनी मंत्र से जीवित किया। और तीन असुर सैनिकों को जीवित न करने और उनका अंतिम संस्कार करने की बात कही। पहली बार किसी असुर की चिता जल रही थी। जिससे

प्रवज्ञा अंतर्मुख होकर सोचने लगा, "लपटें सिकुड़ने लगी। चिताएँ मात्र अंगारों का ढेर रह गई थी। ये अंगारे भी आखिर राख हो जाएँगे। प्रवज्ञा अपने जीवन का क्रम देखने लगा। मृत्यु भी मनुष्य को कितना भावुक बना देती है।.....मृत्यु न होती तो मनुष्य जीवन का मूल्य ही न समझता।"[110]

कच जीवन सर्वोपरी मानकर असुर सैनिकों को युद्ध के परिणामों से बचने और शांति से जीवन यापन करने के लिए प्रेरित करता है। असुरों को समझाते हुए वह कहता है, "प्रतिशोध से हिंसा धोई नहीं जा सकती। हमारे पूर्वज भी युद्ध की अग्नि में जलते रहे और हम भी जीवन भर जलते रहे, साथ ही अपने वंशधरों के लिए इस जलन को छोड़ जाए। इससे क्या लाभ है?[111] असुरराज वृषपर्वा की सेना में के युद्ध विरोधी वातावरण की निर्मिति के लिए कच ने अपने वाणी के तीर चलाए। रात्रि प्रहर में आसक्त देवयानी कच की कुटी में आती है। कच को वह प्रमदा-प्रमोद के लिए प्रेरित करती है। लेकिन कच संयम से काम लेता है। सुबह होते ही देवयानी को कच कुटी में कच का शव प्राप्त होता है। नर्तकी को उसके पास छोड़कर वह शुक्राचार्य के पास दौड़ी चली जाती है। उसके जाते ही कच नर्तकी से बोलने लगता और उसे स्पष्ट कर देता है कि ये उसके प्राणायाम के अभ्यास का परिणाम है। देवयानी के लौटते ही वह घड़े का विषाक्त जल पीने की झूठी कहानी रच देता है। देवयानी ने प्रवज्ञा पर विषप्रयोग करने का आरोप लगाए थे। इसपर विषधर को देखे जाने और उसी द्वारा जलविषाक्त होने की और एक कहानी गढ़कर प्रवज्ञा को आरोपों से मुक्त करता है।

सोम यज्ञ के पूर्व कच प्रहरी अतिबल से मिलकर एक योजना बनाता है और उसे जंगल से विषधर लाने को कहता है तथा रचे जा रहे नाटक में अतिबल और जयंती की भूमिकाओं को भी स्पष्ट कर देता है। प्रवज्ञा कच की सहायता तथा विचारों से प्रभावित हो

---

[110] मनु शर्मा, अभिशप्त कथा, (सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2010), पृ. 215
[111] वहीं, पृ. 217

कच को निवेदन करने के लिए आता है कि वह युद्ध बंदी का प्रस्ताव असुरराज वृषपर्वा के सम्मुख रख दे लेकिन कच इस प्रस्ताव को अस्वीकार करता है। सोम यज्ञ का आयोजन हुआ जिसमें वृषपर्वा स्वयं उपस्थित न होकर सोमरस भिजवा देता है। कच योजना अनुसार सोम यज्ञ में नर्तकी शुक्राचार्य तथा उनके पुत्रों को सोमरस से उबरने नहीं देती। दूसरे दिन कच के शव के नीचे विषधर का सिर कुचल पड़ा मिलता जिसमें विषधर के काटने से कच की मृत्यु का अनुमान लगाया जाता है। देवयानी के कहने पर और नर्तकी के जोर देने पर शुक्राचार्य संजीवनी मंत्र को दोहराते हैं। कुछ समय पश्चात कच विजयी मुद्रा में खड़ा होकर ज्ञान प्राप्ति का आनंद प्रकट करता है। नर्तकी और प्रहरी का भी रहस्योद्घाटन होकर उनकी पहचान जयंती और अतिबल के रूप में होती है। सारे ठगे से रह जाते हैं। कच अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहता है कि, "मैं लुटेरा नहीं हूँ और न मैंने आपकी संपत्ति ही लूटी है। मैंने तो उस संपत्ति पर आपके एकाधिकार को केवल ध्वस्त किया है।......क्योंकि ज्ञान किसी की पैतृक संपत्ति नहीं होता। वह मूलत: समाज का है और उसे समाज में ही फलने-फुलने देना चाहिए।"[112] अंत में शुक्राचार्य ने उसे शिष्यत्व प्रदान किया। कच ने स्वार्थ के कारण देवयानी से संबंध स्थापित किए। संजीवनी विद्या प्राप्ति के बाद भाई-बहन का नाता स्थापित करने पर देवयानी ने क्रोधित हो उसे संजीवनी विद्या फलवती न होने का शाप दिया। देवयानी के शाप को सहजता से लेते हुए उसने औरों के सीखाने की और उसकी उपयोगिता करने की बात की तथा जयंती और अतिबल समेत चलता पड़ा।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि लेखक मनु शर्मा ने 'अभिशप्त कथा' के माध्यम से पुरुष प्रधान संस्कृति में स्त्री का वस्तु समान उपयोग करने की प्रवृत्ति को दर्शाया है, जो आधुनिक समाज में हो रहे मूल्यों की गिरावट के मिथक के रूप में चित्रित है। सत्ता केंद्रित व्यवस्था में स्त्री का मूल्य अपना स्थान बनाए रखने के लिए सबसे अधिक उपयोगी साधन से अधिक कुछ नहीं। प्रस्तुत उपन्यास में प्रेम जन्य विश्वास को राजनीति का एक अंग बनाते

[112] मनु शर्मा, अभिशप्त कथा, (सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2010), पृ. 245

हुए कच अपनी देव जाति के लिए नारी भावनाओं की बलि देता है। देवाधिपति इंद्र और असुरराज वृषपर्वा को स्त्री भावनाओं की अनदेखी करके उनके माध्यम से राजनीतिक लाभ उठाने की कोशिश करते हैं और मानवीय मूल्यों को कुचलाकर अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं। लेखक मनु शर्मा ने प्राचीन कथानक को आधुनिक कथ्य से जोड़ा है।

VII) वीर शिवाजी:

शिवाजी महाराज के चरित्र का उद्धघाटन और विवेचन करनेवाला यह ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसमें शिवाजी पूर्व इतिहास को वर्णित करते हुए उपन्यास का आरंभ हुआ है। लखुजी यादवराव ने अपने विश्वासपात्र कर्मचारी मालोजी तथा विठोजी भोसले को अपने सूबे में जागीर दे दी थी। उनकी योग्यता पर यादवराव को गर्व था। एक दिन एक समारोह में आमंत्रित मालोजी अपने पुत्र शाहजी के साथ उपस्थित रहे। लखुजी ने शाहजी और अपनी पुत्री जीजाबाई को मज़ाक में दूल्हा-दुल्हन संबोधित किया जिससे मालोजी ने लखूजी को अपना समधी मान लिया। लेकिन लखूजी की पत्नी गिरजाबाई इस संबंध को लेकर नाराज़ हो गई। मालोजी द्वारा लखूजी के साथ संबंध स्थापित करने के हठ के कारण लखूजी ने उनकी जागीर छीन ली। मालोजी, विठोजी को अपने अहमदनगर के विरूल गाँव में आकर पुन: खेती आरंभ करनी पड़ी। मालोजी को भवानी माता की कृपा से ज़मीन में छिपा खजाना मिल गया जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। कुछ सैन्यबल भी स्थापित किया। लखूजी यादवराव को सबक सीखाने के लिए उसके जागीर में लूटमार की किंतु कोई परिणाम नहीं हुआ। मालोजी जीजाबाई को अपने घर की बहू बनाने को लेकर हठी थे। उन्होंने सूअर मारकर मस्जिद में फेंककर निजामशाह को लूखजी संबंधी अपनी जबान फेरने की शिकायत की और कार्यवाही न करने पर इसी प्रकार मस्जिद भ्रष्ट करने की धमकी दी। निजामशाह ने लूखजी को समझाते हुए कहा, "हैसियत बनाई जाती है। उसे लेकर आदमी पैदा नहीं होता। आदमी की हैसियत तो उसका पराक्रम और उसकी जबान है।"[113] परंतु लखूजी ने उनकी बात नहीं मानी। निजामशाह ने पूजा तथा सूपा की जागीर मालोजी और विठोजी को दी। एक दिन निजामशाह ने यादवराव और भोंसले (मालोजी और विठोजी) परिवारों को दौलताबाद बुलाकर शाहजी और जीजाबाई की शादी रचा दी। नाराज़ होकर लखूजी ने मुग़लों का पक्ष लिया। एक दिन शाहजी पर आक्रमण किया जिसमें जीजाबाई

[113] मनु शर्मा, वीर शिवाजी, (विद्या विहार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2012) पृ. 18

कैद हुई। इसी कैद में शिवनेरी किले पर 1626 में शिवाजी का जन्म हुआ।

एक दिन मिरताज खाँ ने यादवराव और उसके पुत्र अचलजी को दौलताबाद बुलाकर धोखे से मारा और भालदार खाँ को त्र्यंबक का सूबेदार बना दिया। भालदार खाँ ने शिवाजी के जरिए शाहजी को झुकाने की योजना बनाई लेकिन किले के मंदिर के पुजारी ने शिवाजी को छिपाकर उसकी रक्षा की। शाहजी ने मुग़लों से संधि कर ली जिससे जीजाबाई और शिवाजी मुक्त हो गए। इसी बीच शाहजी की दूसरी शादी तुकाबाई मोहिते के साथ हुई थी। शाहजी ने दादोजी कोणदेव पर जीजाबाई और शिवाजी की देखरेख की ज़िम्मेदारी सौंपी। दादोजी कोणदेव शिवाजी के पहले गुरू बने। शाहजी ने कुछ दिनों तक शिवाजी को अपने साथ बीजापुर रखा लेकिन शिवाजी ने पहले तो दरबार में आने से मना किया। फिर सुलतान को उचित सलाम भी नहीं किया। गो हत्या से व्यतीत शिवाजी के कहने पर सुलतान ने गो हत्या बंदी की। फिर भी एक कसाई द्वारा गो मांस बेचने पर शिवाजी ने उसकी हत्या कर दी। सुलतान ने भी शिवाजी के पक्ष में न्याय किया। सुलतान ने शिवाजी का दूसरा विवाह सोयराबाई के साथ रचाया। उनका पहला विवाह सईबाई के साथ हुआ था। शिवाजी ने वापस लौटने पर दादोजी कोणदेव के सहायकों के पुत्र तानाजी मालसरे, ऐसाजी कंक तथा नेताजी पालकर को साथी बनाया। शिवाजी स्वतंत्र राष्ट्र के सपने देख रहे थे। अपने साथियों से चर्चा कर उन्होंने पूना से नज़दीक का तोरणा किला अपने अधिकार में कर लिया। उसकी मरम्मत करते समय बड़ा ख़ज़ाना प्राप्त हुआ जिससे उन्होंने अपना सैन्य सामर्थ्य बढ़ाया। तोरणा के नज़दीक 'रायगढ़' किले का निर्माण कार्य आरंभ किया जिससे दादोजी कोणदेव नाराज़ होकर उन्होंने शिवाजी को पत्र लिखकर कहा कि, "शिवाजी तुम्हें यह कार्य शोभा नहीं देता। तुम बहादुर बनों, राजद्रोही नहीं।..... वफ़ादारी एक ऐसा गुण है, जिसे मराठा अपनी माँ के दूध से ही प्राप्त कर लेता है। उसकी रक्षा करना उसकी अपनी विशेषता।"[114] लेकिन शिवाजी ने कोई उत्तर नहीं दिया, और निर्माण कार्य तेज कर दिया।

[114] मनु शर्मा, वीर शिवाजी, (विद्या विहार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2012), पृ. 44

दादोजी ने शाहजी को भी इस संबंध में पत्र लिखा। सुलतान ने भी शाहजी से खुलासा मांगा। लेकिन शाहजी ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। शिवाजी ने वसूली के रुपए भी शाहजी को नहीं भेजे। धीरे-धीरे शाहजी की सारी जागीर पर शिवाजी ने अपना अधिकार जमाया। कोंकण गढ़, पुरंदर किला भी हासिल किया। एक दिन कल्याण के वसूली का धन बीजापुर जाने की सूचना मिली। उसे लूटा गया। आबाजी सोनदेव ने कल्याण के किलेदार को बंदी बनाया और किले पर शिवाजी का अमल स्थापित किया। संपत्ति के साथ संदुक में कल्याण के किलेदार की सुंदर बहू भी गलती से लाई गई। शिवाजी ने उसे ससम्मान बीजापुर भेज दिया और अपने साथियों को समझाया, "आज की यह घटना अनजाने में हुई है। हमें ऐसी घटनाओं से बचना चाहिए। हमें दूसरों के घर की महिलाओं का उतना ही सम्मान करना चाहिए जितना हम अपने घर की महिलाओं का करते हैं। यही हिंदू धर्म है, यही हमारा कर्तव्य है।"[115] वसूली लूटने से सुलतान आगबबुला हो गया और शिवाजी को झुकाने के लिए बाजी घोरपड़े के जरिए छल से शाहजी को बंदी बनाया और शाहजी की सलामती के लिए शिवाजी को किले लौटाने के लिए कहा गया। दुविधाग्रस्त शिवाजी ने पत्नी सईबाई के सुझाव पर मुग़लों से दोस्ती के लिए मुगल सरदार मुरादबख्श के पास प्रस्ताव भेजा। शाहजहाँ द्वारा प्रस्ताव को स्वीकृति देते हुए शाहजी को सरदार बनाया गया जिससे आदिलशाह को शाहजी को छोड़ देना पड़ा परंतु नजरकैद अभी भी कायम थी। शाहजी को आदिलशाह ने कर्नाटक की बिगड़ती स्थितियों को ठीक करने की ज़िम्मेदारी सौंपी। बीजापुर से छूटते ही शाहजी ने शिवाजी को बाजी घोरपड़े से छल का बदला लेने के लिए पत्र लिखा। कनकगिरी के युद्ध में शाहजी पुत्र शंभाजी मारा गया। शाहजी ने पुन: स्वयं आक्रमण करके कनकगिरी के दुर्गाध्यक्ष को मार दिया और विजय हासिल की। परंतु कर्नाटक के विद्रोह को वे दबा न सके। बीजापुर के सुलतान ने शाहजी को ठिकाने लाने के लिए शिवाजी के दमन की योजना बनाई। बाजी श्यामराजे को इसकी ज़िम्मेदारी दी गई।

[115] मनु शर्मा, वीर शिवाजी, (विद्या विहार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2012), पृ. 54

शिवाजी कोंकण के अतिदुर्गम महर ग्राम में बसे हुए थे। बाजी श्यामराजे ने चंद्रराव मोरे की सहायता ली। शिवाजी ने रात्रि प्रहर में श्यामराजे पर छिपकर हमला किया जिसमें वह भाग खड़ा हुआ। शिवाजी ने जावली के मोरे को पक्ष में करने के लिए रघुनाथ कोरड़े को दूत बनाकर भेजा लेकिन बात नहीं बनी। शिवाजी ने आक्रमण कर जावली पर अधिकार जमाया। रोहिरा किले पर आक्रमण करके उसे अधिकार में लाया। यही पर उन्हें देश भक्त लड़ाकू बाजीप्रभु देशपांडे मिले। जावली प्रांत में शिवाजी ने प्रतापगढ़ किले का निर्माण किया। बीजापुर के मुहंमद आदिलशाह की मृत्यु हुई। सुलतान बने अलि आदिलशाह को मुग़लों द्वारा आदिलशाह का वारिस स्वीकार न करके औरंगज़ेब के नेतृत्व में युद्ध किया। अलि अदिलशाह ने औरंगज़ेब से संधि की। संधि करके औरंगज़ेब दिल्ली की गद्दी पाने के लिए दिल्ली की ओर गए। जाते समय औरंगज़ेब ने शिवाजी को मित्रता की याद दिलानेवाला और सहायता की अपेक्षा से भरा पत्र लिखा लेकिन शिवाजी ने भातृद्रोह करनेवाले को सहायता न करने का निर्णय दे दिया। इसके परिणाम स्वरूप भविष्य में मुगल आक्रमणों का सामना करने के लिए सैन्यशक्ति और संपत्ति बढ़ाने के लिए चमार मुंडा, रायसीन का परगना और जुनानगर लूटा। औरंगज़ेब ने शिवाजी के बंदोबस्त के लिए कदम उठाए और मावलों ने अपना बलिदान देकर स्वराज का रक्षण किया। शिवाजी ने मुग़लों से संधि करने का प्रस्ताव नासिरी खां के पास भेजा। औरंगज़ेब ने संधि स्वीकार की लेकिन शिवाजी और औरंगज़ेब ने कभी एक-दूसरे पर विश्वास नहीं किया।

शिवाजी ने श्यामराजे पंत को बीजापुर जागीरदार पर आक्रमण की ज़िम्मेदारी सौंपी परंतु उसकी मुर्खतापूर्ण नीति के कारण मराठों की हार हुई। शिवाजी ने मोरा त्रिमुलजी को श्यामराजे के पद पर नियुक्ति करके रघुनाथ पंत की अगुवाई में पुन: आक्रमण की योजना बनाई लेकिन वर्षा ऋतु के कारण सिद्दी पर विजय न मिल पाई। शिवाजी ने बीजापुर के निष्कासित मुसलमान सैनिकों को अपनी सेवा में कर लिया। बीजापुर की बेग़म ने शिवाजी के दमन के लिए शाहजी पर दबाव बनाने की कोशिश की लेकिन सफलता नहीं मिली।

राजमाता द्वारा आमंत्रित दरबार में अफजल खाँ ने शिवाजी को पकड़ने का बीड़ा उठाया। राजमाता ने अफजल को सचेत करते हुए छलनीति अपनाने को कहा। अफजल खाँ के प्रयाण के समय अपशकुन हुआ जिससे प्रयाण टला। अपनी क्रूरता के लिए परिचित अफजल ने, "अपनी तिरसठ प्रिय बेगमों की हत्या केवल इसलिए की कि वे मोह और ममता के बंधन से वह बंध न सके। चिंता से मुक्त होकर वह शिवाजी का सामना करे।"[116] दस हजार सैनिकों के साथ निकले अफजल खाँ ने सैनिक खर्च के लिए तुलजापुर, पंढरपुर, मणिपुर, महादेव पर्वत के मंदिर तोड़े, गाँव लूटे। शिवाजी सुरक्षितता के लिए पूना से प्रतापगढ़ आ गए। अफजल ने वाई में अपना डेरा जमाया। दीवान कृष्णाजी भास्कर के जरिए शिवाजी को मैत्री का प्रस्ताव भेजा। शिवाजी ने अफजल खाँ के मनसुबों को जानते हुए उनसे भेंट लेने के लिए प्रस्ताव को स्वीकृति दी। उनके लिए राष्ट्र की स्वतंत्रता सर्वोपरि थी। शिवाजी ने अपने साथियों से कहा, "मेरे न रहने पर उद्देश्य की पूर्ति का भार आप सब पर होगा इसे मत भूलिएगा। जिस किसी को भी नेता चुनिएगा उनकी आज्ञाओं का पालन करते रहे।''[117] 10 नवंबर, 1659 को प्रतापगढ़ के नज़दीक अफजल-शिवाजी भेंट हुई उसमें अफलज ने दगा किया जिसे शिवाजी की सतर्कता ने पलटकर अफजल को मार दिया।

अफजल खाँ की मृत्यु के बाद आदिलशाह ने सिद्दी जौहर और अफजल खाँ के बेटे फजल खाँ पर शिवाजी के दमन की ज़िम्मेदारी सौंपी। इन्होंने पनहाला पर घेरा डाला। एक दिन शिवाजी पनहाला से विशालगढ़ भाग गए। फजल खाँ ने पीछा किया। शिवाजी सैनिकों को छोड़कर भाग जाना उचित नहीं मानते थे। उन्होंने सेनानायक बाजीप्रभु देशपांडे से कहा, "मैं नहीं चाहता कि मैं भाग जाऊँ और तुम सब मारे जाओ। इस बलिदान के पवित्र महायज्ञ में मैं भी अपनी आहुति देकर भाग्यवान बनना चाहता हूँ।"[118] सातसौं मराठों के साथ बाजीप्रभु ने अपनी प्राणाहुति देकर शिवाजी की जान बचायी। पूना और चाकन में औरंगज़ेब

---

[116] मनु शर्मा, वीर शिवाजी, (विद्या विहार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2012), पृ. 97

[117] वहीं, पृ.103-104

[118] मनु शर्मा, वीर शिवाजी, (विद्या विहार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2012), पृ. 119

के मामा शायस्ता खाँ ने तबाही मचाई थी। शिवाजी ने मुगल सरदार यशवंत सिंह से गुप्त संधि कर ली। अभयता प्राप्त कर शायस्ता खाँ पर हमला किया लेकिन शायस्ता खाँ बच गया। औरंगज़ेब ने उसका तबादला बंगाल कर दिया।

शिवाजी ने सूरत को लूटा जिससे औरंगज़ेब को गहरा धक्का लगा। कुछ दिनों पश्चात पिता शाहजी को घेरने के लिए इखलास खाँ, खवास खाँ, बाजी घोरपड़े, ऐकोजी (शिवाजी के सौतेले भाई) को सहयोग देने के लिए पत्र लिखा। शिवाजी ने योजना बनाकर मुधोल में बाजी घोरपड़े पर आक्रमण किया जिसमें वह मारा गया। शिवाजी की विजय हुई। बाजी घोरपड़े के पुत्र मालोजी को पत्र लिखकर पुश्तैनी दुश्मनी भूल जाने की सलाह दी। खवास खाँ को खानापुर में पराभूत किया। शिवाजी ने ऐकोजी पर आक्रमण नहीं किया। अपनी नीति को स्पष्ट करते हुए शिवाजी नेताजी पालकर से कहते हैं, "मैं अपने भाई पर आक्रमण करके जघन्य पाप नहीं करना चाहता। यदि उसने चढ़ाई कर दी तो लाचार होकर सामना ही करना पड़ेगा। तुम जिसे शत्रु समझते हो मैं उसे पथभ्रष्ट भाई समझता हूँ।"[119]

मुगल सरदार मिर्जाराजा जयसिंह के नेतृत्व में शिवाजी के सभी विरोधियों को एकत्रित करके शिवाजी को घेरने की योजना बनाई। मिर्जाराजा जयसिंह ने बंदी मावलों को अपनी सेवा में भर्ती करने की नाकामयाब कोशिश की। दिलेर खाँ की अगुवाई में पुरंदर पर हमला किया। मुरारजी ने अंतिम सांस तक विरोध किया। दिलेर ने उसे अपने पक्ष में करने की कोशिश की लेकिन उनसे यह कहते हुए इनकार किया कि, "अब तक मैं अपने और अपने देश के लिए लड़ता रहा हूँ।......मुरारजी देश की सेवा में मर सकता है, पर मुग़लों की सेवा में जी नहीं सकता।"[120] शिवाजी ने मिर्जाराजा जयसिंह से पुरंदर में संधि कर ली जिससे उन्हें अपने हिस्से में से बहुत बड़ा हिस्सा मुग़लों को देना पड़ा। मिर्झाराजा जयसिंह ने औरंगज़ेब और शिवाजी को मिलाने की योजना बनाई लेकिन शिवाजी का कभी औरंगज़ेब

---

[119] वहीं, पृ. 144

[120] मनु शर्मा, वीर शिवाजी, (विद्या विहार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2012), पृ.158

पर विश्वास स्थापित नहीं हुआ। उन्होंने साफ कह दिया, "औरंगज़ेब पर मुझे विश्वास नहीं। जिसने अपने भाइयों को मरवा डाला, जिसने अपने पिता को कारा में बंद कर तड़पा-तड़पाकर मार डाला जो अपने बाप का नहीं हुआ, वह भला हमारा हो सकता है?''[121] परंतु स्थितियों को ध्यान में रखकर और मिर्जाराजा जयसिंह से प्राणरक्षा का वचन लेकर शिवाजी औरंगज़ेब से मिलने आग्रा चले गए। औरंगज़ेब के दरबार में उनका अपमान हुआ । औरंगज़ेब शिवाजी से बदला लेना चाहते थे लेकिन मिर्जाराजा जयसिंह ने उनकी सलामती के लिए अपने पुत्र रामसिहं को साथ में भेजा था। शिवाजी को बंदी बनाया गया। एक दिन बीमारी का बहाना बनाकर ग़रीबों में बाँटी जानेवाली मिठाईयों की टोकरी में बैठकर शिवाजी और पुत्र शंभूजी भाग गए। इस काम में उनके सौतेले भाई (शाहजी के दासी पुत्र) हीरोजी फर्जंदे ने मदद की। शंभूजी को मथुरा के ब्राह्मण के घर छुपाया और साधु भेस बनाकर नीराजी की अगुवाई में दक्षिण की ओर निकल पड़े। जब वे राजधानी पहुँचे तो लोगों ने दीवाली मनाई। शंभूजी की सुरक्षा के लिए उसकी मृत्यु की सूचना प्रसारित की गई। जब मथुरा के ब्राह्मणों द्वारा शंभूजी सुरक्षित पहुँचाए गए तो उन्हें 'विश्वास' की उपाधि बहाल की गई। साथ ही एक लाख सोने की मोहरे और 50 हजार रुपए वार्षिक आय की जागीर दे दी गई।

मिर्जाराजा की मृत्यु, संभाजी का मुग़लों से मिलना, तानाजी मालसरे ने अपनी प्राणाहुती देकर सिंहगढ़ को प्राप्त करना, सूरत, बरार को लूटना, पेशवा मोरोपंत की अगुवाई में साल्हेर की लड़ाई में मुग़लों को खुले मैदान में पहली बार मराठों ने पराजित किया। इन सारी घटनाओं में शिवाजी के अधिपत्य को पुन: स्थापित किया। जीजामाता की इच्छानुसार शिवाजी के राज्याभिषेक की योजना बनाई परंतु सनातनी ब्राह्मणों ने (भोंसले परिवार शुद्र मानकर) इसका विरोध किया। बालाजी आवजी के शिष्टमंडल के अध्ययन ने और काशी के गागा भट्ट ने उनके क्षत्रिय होने पर मुहर लगाई। शिवाजी महाराज का राज्याभिषेक हुआ

[121] वहीं, पृ.165

जिसमें सात करोड़ रुपए खर्च किए गए। शक नामक संवत चलाया गया। उर्दू और फारसी के स्थान पर मराठी राजभाषा के रूप में अपनाई गई। राज्याभिषेक के कुछ दिनों पश्चात जीजामाता का देहांत हुआ।

गोलकुंडा के शाह ने शिवाजी से संधि कर ली। गोलकुंडा जाते समय सैनिकों को स्पष्ट हिदायत दी गई कि किसी भी ग्रामवासी को न सताया जाए। गायकवाड नामक सेनानायक ने सावित्रीबाई नामक स्त्री पर अत्याचार किया। इसपर अपना फैसला सुनाते हुए शिवाजी ने कहा, "बहन मेरा सिर अपने पापों के कारण लज्जा से झुक गया है। तुम्हारे साथ जिसने ऐसा व्यवहार किया, वह सचमुच नीच है। पाप ने उसे अंधा बना दिया और मैं उसे सदा के लिए अंधा बना दूँगा।"[122] गोलकुंडा के बाद शिवाजी ने तंजोर के सौतले भाई व्यंकोजी से भेंट की और जागीरी का हिस्सा मांगा परंतु वह भाग गया जिससे शिवाजी ने शांताजी (शाहजी का दासी पुत्र) को वहाँ का शासक बनाया।

शिवाजी पुत्र शंभूजी ने सधवा ब्राह्मणी के साथ अत्याचार किया। शंभूजी को सजा सुनाते हुए शिवाजी कहते हैं कि, "मुझे आज इस बात का दु:ख नहीं है कि मैं अपने पुत्र को कठोरतम दंड देने जा रहा हूँ, किंतु दु:ख इस बात का है कि हमारे स्वतंत्र राष्ट्र की इमारत की नींव पड़ी ही थी कि उसमें घुन लग गया। चरित्रहीनता बड़े से बड़े राष्ट्र को समाप्त कर देती है।"[123] शिवाजी ने शंभूजी को पनहाला किले में बंदी बनाया और उसके दंड के बारे में सोचते रहे। इसी दौरान शंभूजी पनहाला से भागकर दिलेर खाँ से मिल गए। 2 अप्रैल, 1676 में औरंगज़ेब ने हिंदुओं पर जिजिया कर लगाया जिसका शिवाजी ने विरोध किया। मुग़लों के शासन में स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचार से शंभीजी द्रवित होकर पुन: लौट आए। लेकिन शिवाजी से उनकी न बन सकी। शंभूजी से भेंट लेने के बाद शिवाजी ने उसे पुन: बंदी बनाया और रायगढ़ लौटकर पुत्र राजाराम का उपनयन और विवाह संपन्न कराया। शिवाजी

[122] मनु शर्मा, वीर शिवाजी, (विद्या विहार प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2012), पृ. 230
[123] वहीं, पृ. 231

आमाशय की बीमारी के चलते 3 अप्रैल, 1680 को परलोक चले गए।

ऐतिहासिक महापुरुष के जीवन के तथ्यों को इतिहास सम्मत दस्तावेज़ के आधार पर सजीव बनाया है। शिवाजी जैसे महापुरुष की योग्यता को अधोरेखित करता हुआ यह उपन्यास राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रप्रेम और स्वजनहित की रक्षा के लिए समर्पित एक योग्य शासक की समयातीत स्थितियों में समीक्षा करती है। साथ ही हमें जीवन के महानतम ध्येय के लिए प्रेरित करता है। उपन्यास के आरंभ (पुरोवाक्) में ही लेखक ने अपनी तटस्थता संबंधी बातें कही है। अत्यंत साक्षी भाव से एक महान व्यक्ति के चरित्र की बारिकियों को उजागर किया है। इस उपन्यास के निर्माण से एक तेजस्वी, पराक्रमी व आदर्श राजा का सजीव इतिहास का परिचय महाराष्ट्र से दूर अन्य प्रदेशों के पाठकों को हो जाता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि, मनु शर्मा के उपन्यास सृजन का आधार हमेशा से इतिहास और प्रागैतिहास रहा है। इतिहास से उन्होंने तथ्य प्राप्त किए, जिसे अपनी कलम से समाज मूल्यों की स्थापना करनेवाले कथ्यों में परविर्तित कर दिया। उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'राणा सांगा' तथा 'वीर शिवाजी' इसी श्रेणी के उपन्यास हैं। लेखक का इतिहास ज्ञान प्रगाढ़ है। इतिहास के अनेक दस्तावेज़ों में से समान तथ्यों को जोड़ते हुए उन्होंने अपनी संवेदनशीलता तथा कल्पना से उभारते हुए ऐतिहासिक पात्र सजीव किए। जिनके नाम का उच्चारण ही मराठों (महाराष्ट्र के रहिवासी) में नव चेतना का संचार कर देता है, ऐसे छत्रपति शिवाजी महाराज के जीवन पर आधारित अत्यंत ऐतिहासिक व उतना ही सजीव उपन्यास रचकर अपने ऐतिहासिक उपन्यास सृजन की सिद्धहस्तता का प्रमाण दिया। उपन्यास को रोचक बनाने के लिए इतिहास के किसी तथ्य के साथ कोई छेड़-छाड़ नहीं की। और यह उपन्यास मात्र प्रचलित इतिहास समंत उपन्यास न होकर लेखक ने इतिहास के कुछ धूमिल या अछूते अंश को भी सप्रमाण प्रस्तुत किया है जिससे यह उपन्यास एक शोधपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास बन गया है। इस उपन्यास का महत्व इसलिए भी अधिक है कि सन् 1950 में जब यह उपन्यास प्रकाशित हुआ तब तत्कालीन काल में मराठी साहित्य

में भी शिवाजी महाराज पर रचे साहित्य की गिनती न के बराबर थी। इसलिए यह उपन्यास पूर्णत: मौलिक व ऐतिहासिक शोध पर आधारित है। लेखक ने इतिहासकार की आँखों से पाए तथ्यों को साहित्यकार की संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया है। मनु शर्मा की महानता का आधार यह भी है कि उन्होंने उत्तरी भारत में रहते हुए सुदूर महाराष्ट्र के राजा शिवाजी पर अपना यह शोधपूर्ण उपन्यास प्रस्तुत किया है। राष्ट्रवाद को उजागर करनेवाला यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रृंखला में अपनी अलग पहचान रखता है।

VIII) एकलिंग का दीवान :

मनु शर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास को पुन: जीवित करने की कला है। 'वीर शिवाजी' उपन्यास में 'शिवाजी' और 'एकलिंग का दीवान' उपन्यास में 'कालभोज' अर्थात 'बाप्पा रावल' को ऐतिहासिक तथ्यों के साथ सजीवता प्रदान की गई है। "यह सजीवता इतिहास सम्मान है और जहाँ इतिहासकारों में मतैक्य नहीं वहाँ अपनी कल्पना की उद्भावना से उसे साकार किया है। 'एकलिंग का दीवान' उपन्यास में कुछ-कुछ स्थानों पर उन्होंने दंतकथाओं का सहारा लिया है। जिसकी सहायता से उन 'भील के जीवन को, उनके रस्म और रिवाज़ों को यथार्थ चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है।"[124]

सन् 1980 में रचित 'एकलिंग का दीवान' उपन्यास का आरंभ ईडर के राजा महेंद्र की हत्या से होता है। राजा की हत्या के बाद भील राजकुमार 'कालभोज' की भी हत्या करना चाहते थे लेकिन रानी के त्याग और तारा की राजभक्ति ने कालभोज को ईडर से दूर सुरक्षित स्थान की तलाश में भांडेर किले पर पहुँचा दिया। भांडेर किले के दीवान जी ने सिर्फ जादव की एहसान के तले यह जोखिम उठाई थी लेकिन उसे अभी भी विश्वास नहीं था कि तारा जो कहानी बताती है वह सही है। दीवान जी अपने अनुभव के आधार पर कहते हैं, "नदियों का, जिनके हाथ में हथियार हो उनका, नखवालों का, सींगवालो का, स्त्रियों का और राजकुल के लोगों का विश्वास नहीं करना चाहिए।"[125] तारा कालभोज को पुत्रवत चाहती और अमानत की तरह संजोए रखती। भोज भी तारा को माँ मान बैठा था। कुछ दिनों पश्चात ईडर के सैन्य भांडेर किले के आस-पास तक राजकुमार की तलाश में पहुँच गए। तारा को यह बातें वहाँ की अन्य सेविकाओं से पता चल जाती। तारा ने अपनी तथा भोज की वास्तविक पहचान छुपाई थी। लंपट राजा महेंद्र की हत्या के बाद उसने पुत्र की हत्या के लिए लालायित ईडर सैनिकों की निंदा करते हुए एक स्त्री ने तारा से कहा, "कोई जरूरी नहीं

[124] मनु शर्मा, एकलिंग का दीवान, (प्रतिभा प्रतिष्ठान प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. सं. 7
[125] वहीं, पृ. सं. 50

है कि अत्याचारी का पुत्र अत्याचारी हो। हिरण्यकशिपु का प्रल्हाद पुत्र ही था। विष से भी जीवनदान देनेवाली दवाएँ बनाई गई है।"[126] तारा ने जादव की सूचना और सलाह पर भोज की सुरक्षा के लिए अपनी तीर्थयात्रा की बात प्रचारित करके पाराशर गाँव के गमेती (सरदार) की सहायता से भोज के साथ नया जीवन शुरू किया। भोज के बाल्यकाल के सुखकर दिन यही बीते। यहाँ उसे मित्र के रूप में गमेती के पुत्र बाली और देव मिले। ''तारा उसके (भोज के) निर्माण में कुछ उठाके नहीं रखती। वह स्वयं उसे शास्त्र की शिक्षा देती। शस्त्र की शिक्षा देना गमेती के ज़िम्मे है। उसने उसे धनुर्विद्या में प्रवीण कर दिया है। भाला और तलवार चलाना भी अच्छी तरह जानता है।''[127] तारा ने भोज की नीतिगत शिक्षा के लिए अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ी थी। परंतु एक दिवस राजा महेंद्र के विश्वासपात्र राजपुरोहित सत्यनारायण ने जादव के साथ पराशर आकर तारा को समझाया कि भोज को राजा बनाने के लिए यह शिक्षा पर्याप्त नहीं। उसे शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है इसलिए तुम नागहद चली जाओ। बाली और देव के साथ भोज माँ को लेकर नागहद पहुँचा। उसकी बालसखी चंपा पीछे छूट गई थी। यहाँ भी उसे पाराशर के समान गऊओं को चराने का ही काम करना पड़ता। देव और बाली उसका साथ देते है। संध्या समय पंडित रूद्रमणि उसे वैदिक शिक्षा देते है। यहाँ के सात्विक वातावरण में उसकी बुद्धि का तेज बढ़ता गया।

एक बार माँ तारा से झूठ बोलकर वह बाली और देव के साथ नागदा नगरी में झुलनोत्सव देखने गया और खेल-खेल में सोलंकी राजा की राजकुमारी से उसने विवाह कर लिया। रात के दो पहर बितने पर भी भोज के न लौटने पर तारा चिंतित हो पंडित रूद्रमणि के साथ ज्योतिषाचार्य महेश पंडित के पास गई। उसने ग्रहों के आधार पर उसके उज्ज्वल भविष्य की बातें की जिससे तारा आश्वस्त हुई। दूसरे दिन अनंगपाल की गाय का पीछा करते भोज हारितमुनि के आश्रम पहुँचा। हारितमुनि भोज के विनित भाव से प्रसन्न होकर

---

[126] वहीं, पृ. सं. 66

[127] मनु शर्मा, एकलिंग का दीवान, (प्रतिभा प्रतिष्ठान प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012), पृ. 84

महाशिवरात्रि के दिन उसकी यज्ञोपवीत करने की योजना बनाते हैं। महाशिवरात्रि के दिन यज्ञोपवीत समारोह में नागहद गाँव के सारे लोग तथा जादव, राजपुरोहित भील मुंगा के साथ उपस्थित होते हैं। विधिवत यज्ञोपवीत समारोह संपन्न होता है। हारितमुनि भोज को आशीर्वाद पाने के लिए मध्यरात्रि बुलाते हैं। मध्यरात्रि भोज के पहुँचने पर वे उसे 'एकलिंग का दीवान' संबोधित करते हैं। भोज भी दीन-दु:खियों को सेवा करने की प्रतिज्ञा लेता है। हारित मुनि उसे आशीर्वाद स्वरूप कहते हैं, "तुम राजस्थान के प्रबल शासक होंगे। इतिहास तुम्हें बाप्पा रावल नाम से अधिक याद करेगा।"[128]

राजा सोलंकी अपनी राजकुमारी के विवाह के लिए उसकी कुंडली राजज्योतिष महेश पंडित को दिखाते हैं। कुंडली देखकर ज्योतिषाचार्य उसके विवाहित होने की बात कहते हैं जिससे राजा क्रुद्ध होकर राजज्योतिषी को प्राणदंड घोषित करते हैं। प्राणदंड के लिए आयोजित समारोह में राजकुमारी द्वारा खेल-खेल में विवाह संपन्न होने की स्वीकृति पर राजज्योतिष की मुक्तता की जाती है परंतु जिसने राजकुमारी से विवाह किया है उसे जीवित या मृत पकड़ने का राजा आदेश देते हैं। बाली द्वारा भोज और राजकुमारी के विवाह की बातें सुनकर तारा चिंतित होकर राज ज्योतिष महेश पंडित के पास पहुँचती है। उसी के सलाह पर तारा अपने पुत्रों के साथ नागहद नगर छोड़कर चित्तोड़ की ओर चल पड़ी है। राह में साँप के काटने से तारा की मृत्यु होती है। शोक मनाते पुत्रों को साधु समझाता है, "यह मृत्यु लोक है यहाँ सब मरने के लिए ही आते हैं।......बेटा, मोह-ममता छोड़ो और जानेवाले को सुख से जाने दो।"[129] चित्तोड़ में अरब पहलवान हबीब को भोज द्वारा हरा देने से राजा मानमोरी उसे सरदार बनाने का ऐलान करते हैं। सेना ने भी भोज को आनंदित होकर बधाई दी लेकिन दूसरे दिन सेना के मन में मिलीजुली कुश्ती का संदेह निर्माण हुआ जिससे सैनिक भोज की अनदेखी करने लगे। भोज जब राजा मानमोरी से मिला और अपना व्यक्तिगत

[128] मनु शर्मा, एकलिंग का दीवान, (प्रतिभा प्रतिष्ठान प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.162
[129] वहीं), पृ.183

परिचय देते हुए उसने तारा द्वारा बताई जानकारी प्रस्तुत करते हुए स्वयं को ईडर के स्वर्गवासी राजा महेंद्र का पुत्र बताया। राजा महेंद्र राजा मानमोरी के बहनोई थे। भोज के परिचय पर उन्हें आनंद तो हुआ लेकिन साथ में संदेह भी। सच्चाई जानने के लिए उन्होंने ईड़र के राजपुरोहित सत्यनारायण को आमंत्रित किया। सत्यनारायण ने उन्हें सत्य स्थिति से अवगत कराते हुए भोज को ही ईडर का कुँवर बताया। राजा मानमोरी नि:संतान थे। उनकी शासन व्यवस्था चरमरा गई थी जिससे प्रजा नाराज थी। सरदार मुँहदेखी करते थे। सत्यनारायण ने भोज को चित्तोड़ का शासक बनाने का सपना देखा था। उन्होंने षड्यंत्र रचकर प्रजा, सरदार, राजा को अलग-अलग कर दिया। राजा में सरदारों के प्रति अविश्वास, सरदारों में राजा की नीतियों के प्रति संदेह भाव और प्रजा में शासन व्यवस्था के प्रति असंतोष भर दिया। इस षड्यंत्र को भावुकता से देखनेवाले भोज को राजपुरोहित सत्यनारायण समझाते हैं, "तुम पागल हो, भोज! राजनीति बुद्धिजन्य चाणक्य की कठोरता चाहती है, महाकवि कालिदास की भावनामय भावुकता नहीं।"[130]

सरदार युद्ध पर जाने के लिए तैयार नहीं थे ऐसी स्थिति में भोज ने राजा का विश्वास संपादन कर युद्ध पर जाने के लिए तैयार होता है। जाने से पहले जनता को विश्वास प्रदान करते हुए युद्ध में प्राप्त खज़ाने को जनता को लिए खोलने की बात कर जनता के दिलों में अपनी जगह बना लेता है। विजयी होने पर उसी प्रकार का कार्य कर उनका विश्वास भी हासिल करता है। राजपुरोहित राजा के मन में भय फैलाकर उसे संन्यास लेने के लिए प्रेरित करता है। फिर राजा सोलंकी से मिलकर राजकुमारी का विवाह भोज से ही हुआ है यह समझाकर उन्हें राजकुमारी के साथ राज्यारोहन समारंभ में उपस्थित होने के लिए आमंत्रित करते हैं। भोज के राज्यारोहन के दिन मानमोरी राजा की पत्नी पति का पत्र प्रस्तुत करती है जिसमें राजा के संन्यासी होने और भोज को राजा के रूप में अपना उत्तराधिकारी चुनने की बात कही थी। प्रजा इस पत्र को सुनकर खुश होती है। माँ तारा की इच्छा के अनुसार बाली

[130] मनु शर्मा, एकलिंग का दीवान, (प्रतिभा प्रतिष्ठान प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.198

अपने रक्त से भोज का राजतिलक करता है। भोज को 'बाप्पा रावल' की उपाधि दी जाती है और राज्यारोहन समारोह में भोज जनता को विश्वास दिलाता है कि वह पुत्रवत अपनी प्रजा की देखभाल करेगा। समारोह के साथ उपन्यास भी समाप्त होता है।

लेखक मनु शर्मा अपने इस उपन्यास की ऐतिहासिकता संबंधी स्वयं कहते हैं, "मैंने आज की आँखों से साढ़े बारह सौ वर्षों का पुराना, धरती में सोया और हवा में उड़ता हुआ इतिहास देखने की चेष्टा की है।"[131] लेखक ने उपन्यास सृजन में इतिहासकारों के आधार के साथ-साथ स्वयं स्थानविशेषों की यात्रा करके इतिहास को समझने की तथा तथ्यों के साथ प्रस्तुत करने की कोशिश की है लेकिन साथ ही किवदंतियों का भी आधार लिया है जिससे उपन्यास में घटनात्मकता के साथ कलात्मकता आ गई है। बाप्पा रावल का व्यक्तित्व इतिहास के पन्नों में कम और किवदंतियों में ज्यादा जीवित है। अत: इस उपन्यास में भी इतिहास और कल्पना का मिश्रित रूप मिलता है।

[131] मनु शर्मा, एकलिंग का दीवान, (प्रतिभा प्रतिष्ठान प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012), पृ.8

IX) घरौंदा :

मनु शर्मा के सामाजिक उपन्यासों की श्रृंखला की पहली कड़ी 'घरौंदा' आज़ादी की पृष्ठभूमि में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांप्रदायिक वातावरण का बालक मन पर पड़ता प्रभाव चित्रात्मक शैली में प्रस्तुत करता है। 'जग्गू' की बालसुलभ धारणाएँ उपन्यास को भावनिकता प्रदान करती है। बाल्यकाल में पिता की मृत्यु से परिवार पर छाया आजीविका और सामाजिक स्तरीयता का संकट, माँ का परिवार पालने के लिए कोठी (हवेली) में काम करना, जग्गू का दोस्त चंपो के साथ सह संबंध, सुमेर चाचा का अपनत्व, हमिद की दादागिरी, हिंदू-मुस्लिम के गहरे रिश्तों के बावजूद सांप्रदायिकता के परिणामों को भोगता समाज, अंग्रेजी शासन की तोड़ो-फोड़ो और राज करो की नीति, दानिस और रामकिशुन जैसे गर्म दल और नर्म दल का प्रतिनिधित्व करते हुए सुराजी, पियारी जैसा परिवर्तनशील चरित्र, रानी बहू जैसे समाजशील और छोटे सरकार जैसे सामंत पात्र तथा लाला जगजीवन जैसे सफ़ेदपोश क्रिमीनल आदि सबको समेटे और हर छोटी लेकिन महत्त्वपूर्ण घटना तथा उसके गंभीर परिणामों को लेकर उपन्यास आगे बढ़ता है। उपन्यासों की पहली श्रृंखला आदि से अंत तक बनारस पर केंद्रित है। इसलिए उपन्यास के संवादों में स्थानीय बोली का प्रयोग दिखाई देता है।

उपन्यास की शुरुआत जग्गू के पिता की मृत्यु की स्थितियों को लेकर होती है। मृत्यु की वास्तविकता से बालक मन कोसो दूर होता है। लेखक ने जग्गू की आँखों से मृत्यु को देखने की कोशिश की है। सुमेर चाचा की बेटी चंपो से जग्गू की दोस्ती जो कट्टी और मिल्ली के सी-सॉ पर तैरती हुई नजर आती है। बालक जग्गू की पाक आँखों से हिंदू-मुस्लिम के बवंडर को तौला गया है। चंदर द्वारा डफली चाचा को दंगे में मारे जाने पर सुमेर चाचा का फूट-फूट कर रोना आपसी गहरे संबंधों के साथ परवशता प्रकट करता है। अंग्रेजों की दोगली नीति तथा जनमानस पर उसका असर आदि कई घटनाएँ लेखक ने चित्रित की है। गांधी आंदोलन का गाँव पर पड़ता प्रभाव, लोगों में सुराजी बनने की होड़, खद्दर का प्रयोग,

रामकिशुन के रूप में गाँधीवादी नेता को प्रस्तुत किया है जबकि दानिस द्वारा युवाओं के दिलों पर राज करनेवाले नेताजी सुभाष बाबू के विचारों से प्रभावित देश को आज़ाद करने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार रहनेवाले तथा गांधी विचारों को नकारनेवाले युवकों की मानसिकता को प्रकट किया है। लाला जगजीवन सफ़ेदपोश असभ्य, क्रिमीनल लोगों का प्रतिनिधि है। ऐसा कोई असामाजिक कार्य नहीं जो वह न करता हो। मिलावट से लेकर औरतों, लड़कियों की खरीद-फरोख और बच्चों को उठाकर उन्हें लुला-लंगडा बनाकर भीख मंगवाना। फिर भी अँग्रेज़ सरकार तथा छोटे सरकार जैसे सामंतो से संबंध बनाकर अपने आपको जनमान्य प्रतिष्ठित व्यक्ति सिद्ध करता है। बहुत से मामलों में फंसा है फिर भी धन और ताकत के दम पर बेगुनाह सिद्ध करने की जद्दोजहद करता है। साथ ही वह दानिस जैसे सुराजी को बदनाम कर अपने मार्ग से हटाने की कोशिश करता है। जग्गू की बालसुलभ आँखो से इन सारी घटनाओं का आकलन पाठकों को लेखक कराते हैं।

X) समय साक्षी है :

सामाजिक उपन्यास की दूसरी कड़ी 'समय साक्षी है' में जग्गू का विकसनशील क्रांतिकारी रूप प्रकट हुआ है। अँग्रेज़ शासन की बढ़ती ज्यादतियाँ लोगों को उनके विरोध के लिए प्रेरित करती दिखाई देती है। सन् 1942 को गाँधी जी का 'करो या मरो' और 'भारत छोड़ो' का नारा सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी स्वतंत्रता के लिए योगदान देने की प्रेरणा दे गया। उसके बाद सभी बड़े नेताओं की गिरफ्तारी हो गई। जिस आंदोलन को अँग्रेज़ कुचल देना चाहते थे वह कुछ अधिक सक्रिय हो गया। गांधी विचारों को नकारनेवाला दानिस भी 'करो या मरो' के नारे के कारण और अधिक प्रभावित हो गया। बनारस में रामकिशुन जैसे गाँधीवादी नेताओं की अगुवाई में जुलूस निकालने की योजनाएँ बनाई गई। लोग लॉर्ड एमरी का भाषण रेडियो पर सुनने के लिए उतावले हो गए। पूरा भाषण अंग्रेजी में था लेकिन लोग न समझते हुए भी उसे गंभीरता से सुन रहे थे। डिप्टी हरनारायण सिंह ने भाषण का सारांश सुनाते हुए समझाया कि 'अँग्रेज़ भारत को आज़ाद कराने के पक्ष में नहीं है, गाँधीजी अराजकता फैला रहे थे इसलिए उन्हें गिरफ्तार करना पड़ा, ऐसा लार्ड एमरी का कहना है। अंत में आज़ादी का आंदोलन छात्रों के हाथों में सौंपना तय हुआ। अगले दिन सभी छात्रों की अगुवाई में दीवानी कचहरी पर मोर्चा निकाला गया जहाँ बड़े धैर्य और निड़रता से जग्गू ने कचहरी का यूनियन जॅक हटाकर तिरंगा फहराया। कलेक्टर फिनले ने आंदोलन को शांतिपूर्वक होने दिया। विषम स्थितियों में भी उसने गोलीबारी न करके सिर्फ लाठीचार्ज से काम चलाया। जग्गू के मन में फिनले का व्यक्तित्व और भी विशाल हो गया था। इस आंदोलन में चंदर जैसे लाला के आदमी भी सुराजी बन गए थे। अगले दिन अखबार में जग्गू और चंदर की तस्वीर भी छपी थी। जग्गू की सक्रियता ने 'रणभेरी' समाचार पत्र को वितरित करने का काम भी किया। रानी बहू भी कोठी से निकलकर सामाजिक सेवा की ओर अग्रेसर हो चुकी थी। अनाथालय खोलकर अनेक दीन दुखियारियों को पनाह दी थी। वह गाँधीजी के हृदय परिवर्तन की बात से अत्यंत प्रभावित थी। इसलिए वह समाज

विघातक ताकतों को नष्ट करने की बजाए उनका हृदय परिवर्तन कर उन्हें समाजधारा से जोड़ने पर अधिक जोर देती थी। होटलवाले द्वारा छोटा बच्चा लालू को पीटने पर भी अधिक उत्तेजित न होते हुए उसके मूल कारणों की चर्चा करते हुए रानी बहू दानिस से कहती है, "स्वार्थ और लोभ की अधिकता आदमी को जानवर बना देती है। धन लोलुपता की धरती ही शोषण की पौध को जन्म देती है।"[132] पियारी भी रानी बहू के अनाथालय में ही आश्रित हो गई थी। रानी बहू को अनाथालय के कामों में मदद करने का काम दानिस करता था लेकिन उसकी सोच कभी-भी रानी बहू से मेल नहीं खाती थी। फिर भी वह अपनी तरफ से पूरा योगदान देता था। लेकिन धीरे-धीरे रानी बहू अपनी पारिवारिक समस्याओं से अधिक त्रस्त हो गई। इधर स्वतंत्रता आंदोलन ठंडा पड़ने से क्रांतिकारियों की गिरफ्तारी बढ़ने लगी। दानिस और पियारी भी भूमिगत हो गए। पियारी ने दानिस के घर में कुछ दिन पनाह पा ली और दानिस बनारस से दूर चला गया। इन स्थितियों का फायदा उठाते हुए लाला अधिक सक्रिय हो गया उसने अनाथालय को बदनाम करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मजबूरी में रानी बहू ने अनाथालय बंद कर दिया। दानिश की माँ की बीमारी में पियारी ने खूब सेवा की। इसी बीमारी ने जग्गू की माँ और दानिस का परिवार करीब आ गया।

नवरात्रि के उत्सव में कात्यायनी माँ के मंदिर से चंपो गायब हो गई। अंतिम बार उसे मुहल्ले की राधा के साथ देखा गया था। हर कोई इस घटना के पीछे लाला का हाथ होने की संभावना मन में पाले हुए था लेकिन खुलकर कोई कह नहीं रहा था। खूब खोज की लेकिन चंपो नहीं मिली। सुमेर चाचा लाला से भी मिला लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ उल्टा अप्रत्यक्ष रूप से उसने पुलिस को खबर न करने के लिए धमकाया। चाचा का मानसिक संतुलन बिगड़ गया जिससे उसे दौरे भी आने लगे थे। एक दिन चंपों की चिट्ठी आई लेकिन उसमें उसका अता-पता नहीं था। इधर द्वितीय विश्वयुद्ध में अंग्रेजों की विजय, इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी का सत्ता में आना जिससे सभी राष्ट्रीय नेताओं की जेल से रिहाई हो गई। पियारी

---

[132] मनु शर्मा, समय साक्षी है, (प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2011), पृ.224

भी जेल से रिहा हो गई। दानिस भी प्रकट हो गया। दानिस की चाल के अनुसार चंपों की चिट्ठी में राधा का जिक्र होने की बात फैलाई गई जिससे लाला भी भयभीत हो गया। कुछ दिनों पश्चात राधा की कटी लाश पाई गई।

देश की आज़ादी की सुगबुहाट के साथ-साथ बँटवारे और हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता तथा मुस्लिम बहुल प्रांत से हिंदुओं को हटाने के कारण बनारस के मुस्लिम इलाकों में आज़ादी के जश्न की बजाए भय और विरोध का स्वर उभर रहा था। लेकिन दानिश इससे बिल्कुल अलग था। 15 अगस्त, 1947 की स्वतंत्रता मार्च में तिरंगा लिए शरीक हुआ लेकिन बनारस के मुख्य समारोह में लाला और छोटे ठाकुर को मंच पर अगुवाई करते देख जग्गू, सुमेर चाचा, दानिश क्रोधित हो उठते हैं। लेखक जग्गू की मानसिकता में उतरकर लिखते हैं, "मुझे भी लगा कि पैदा होने के पूर्व ही हमारी आज़ादी ऑक्टोपस के घिनौने पंजों के भीतर फँस गई है।"[133] भारत अंग्रेजों के हाथ से निकालकर ठगी और गुनहगार नेताओं के हाथ में चला गया। लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता से इसे वर्णित किया है।

[133] मनु शर्मा, समय साक्षी है, (प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2011), पृ.263

XI) विभाजित सवेरा :

सामाजिक उपन्यास की तीसरी कड़ी 'विभाजित सवेरा' देश विभाजन की त्रासदी के साथ आगे बढ़ता है। पाकिस्तान में हिंदुओं पर की गई ज्यादतियों की प्रतिक्रिया के रूप में भारत में मुस्लिम विरोधी वातावरण बन रहा था। जिससे अमन पसंद सामान्य मुसलमान भयभीत हो रहे थे। दानिश की अम्मा सलमा की सुरक्षा को लेकर काफी चिंतित रहती थी। ऐसी स्थिति पर आपबीती भोगा मूलचंद कहता है,"क्या हो जाता है उस समय आदमी को, जब उसपर मज़हबी जुनून सवार हो जाता है। उसकी आँखों में खून उतर आता है और दिल में शैतान। तब उसे हिंदू दिखाई देता है, सिख दिखाई देता है, मुसलमान दिखाई देता है, पर आदमी दिखाई नहीं देता।"[134] दंगों की पृष्ठभूमि में गाँधीजी भाईचारा और शांति के लिए अनशन करते हैं। सभी ओर उनके स्वास्थ्य को लेकर चिंता प्रकट की जाती थी लेकिन विशेष रूप से सामान्य मुस्लिम गाँधीजी के स्वास्थ्य को लेकर काफी चिंतित थे। वे अपना भविष्य या अस्तित्व गाँधीजी के अस्तित्व के साथ जोड़कर देखते थे। दानिश को भी पाकिस्तान चले जाने की धमकी देनेवाला पत्र मिला था जिससे उसका पूरा परिवार भयभीत था। मदनलाल द्वारा गांधी सभा पर बम फेंकना और पागल हिंदू द्वारा गाँधीजी की हत्या करना ये घटनाएँ हिंदुओं की गाँधीजी की पाकिस्तान नीति का विरोध दर्शानेवाली घटनाएँ के रूप में उभरती है। जग्गू की आर्थिक स्थितियों ने उसकी कॉलेज की पढ़ाई छुड़वा दी। रामू साव की प्रेरणा व सहायता से जग्गू ने गमछे की दुकान चलाई लेकिन एक दिन गऊ की टकराहट से पैर में गहरी चोट पहुँचती है। जिससे उसकी दुकान बंद हो जाती है। इन स्थितियों में चंपो द्वारा भेजे गए रुपयों और जताए गए स्नेह का जग्गू के परिवार को बड़ा सहारा मिलता है। जग्गू का परिवार अपना पुराना घर छोड़कर जगदम्बा बाबू के यहाँ रहने के लिए चले जाते हैं। यही जग्गू की आगे की पढ़ाई होती है और उसे डी.ए.वी. कॉलेज में अध्यापक की नौकरी भी मिलती है। इलाहाबाद के एक ब्राह्मण परिवार की लड़की के साथ उसकी

[134] मनु शर्मा, विभाजीत सवेरा, (प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010), पृ. 15

शादी भी होती है। एक बार जग्गू की मां कुंभ स्नान करने इलाहाबाद अपनी पारिवारिक आत्मीयता प्राप्त मंगरी के साथ चली जाती है। चंपो के भेंट की खुशी और उसके द्वारा दी गई चीजें लेकर माँ इलाहाबाद से वापस आती है। मँगरी उससे पहले ही घर पहुँच गई थी। संदुक खोलकर जग्गू के पारिवारिक लोग भारी भरकम जेवरातों के साथ चंपो की चिट्ठी पाते हैं।

सन् 1962 में भारत-चीन युद्ध में भारत की हार से नेहरू के विपक्ष में वातावरण तैयार होता है। सन् 1964 में नेहरू मृत्यु के बाद लालबहादूर शास्त्री का प्रधानमंत्री बनना। पाकिस्तान पर 1965 में विजय प्राप्त करना, जय जवान- जय किसान का नारा, शास्त्री की ताश्कंद में मृत्यु, कांग्रेस का मोरारजी देसाई और इंदिरा गांधी में विभाजन, इंदिरा गांधी का प्रधानमंत्री बनना आदि राष्ट्रीय स्तर की घटनाएँ बनारस की सामान्य जनता पर असर छोड़ती दिखाई देती है। लाला का चीन युद्ध समय में जनता द्वारा किए गए स्वर्ण दान में घपला करना, उसकी सी.बी.आई. इन्क्वायरी, चौधरीचरण सिंह के साथ कांग्रेस को छोड़ना आदि बनारस तथा लाला के जीवन की मुख्य घटनाएँ थी जिसपर टिप्पणी करते हुए एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कहता है, “इस स्साले की राजनीति समझ में नहीं आती। कल तक काँग्रेस में इंदिरा जी का खासमखास था। और चौधरी का दुलरूआ बन गया है।”[135] लाला की अवसरवादिता उसे बचाए हुए भी और उसके जघन्य पाप उसे डूबो देने के लिए तत्पर थे। लाला अपने अपराधों से बचने के लिए अपने लंगडे नौकर को मारकर उस पर सारे इल्जाम डाल देना चाहता था जिसकी भनक लगते ही वह भाग गया तथा एस.एस.पी के समक्ष उपस्थित होकर उसने लाला के पापों का चिट्ठा खोल दिया। चंपो के माँ की बीमारी, जग्गू का बन रहा घर, सलमा का जग्गू के प्रति समर्पण भाव आदि उपन्यास के ऐसे बिंदु हैं जो उपन्यास में भावुकता उत्पन्न करते हैं।

इंदिरा गाँधी द्वारा बैंकों का राष्ट्रीयकरण, जयप्रकाश नारायण का इंदिरा जी के विरोध में राष्ट्रीय आंदोलन, उसका बढ़ता प्रभाव तथा 26 जून, 1975 के इंदिरा जी द्वारा घोषित

[135] मनु शर्मा, विभाजीत सवेरा, (प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010), पृ.246

आपातकाल की घोषणा के साथ उपन्यास तथा उपन्यासों की श्रृंखला समाप्त हो जाती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि, श्रृंखलाबद्ध सामाजिक उपन्यास में लेखक आज़ादी पूर्व और आज़ादी पश्चात की राजनीतिक, सामाजिक पृष्ठभूमियों को सजीव बनाते हुए उसे आम जीवन के साथ एकमेक करते हैं। उपन्यास की कोई घटना स्वतंत्र नहीं है वह एक दूसरे पर अवलंबित और संबंद्ध है। विशाल राष्ट्रीय आंदोलनों का ज़मीनी स्तर पर होता असर मनु शर्मा के सामाजिक उपन्यासों की विशेषता है। इन सामाजिक उपन्यासों के पहले दो खंड राजनीतिक कम और सामाजिक ज्यादा है जबकि अंतिम खंड सामाजिक कम और राजनीतिक तथा पारिवारिक ज्यादा है।

निष्कर्ष :

ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना करके साहित्य में प्रवेश करनेवाले लेखक मनु शर्मा ने ऐतिहासिक तथ्यों व व्यक्तिगत शोध पूर्व अध्ययन के आधार पर कालजयी इतिहास पुरुषों को विशाल राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत किया है। 'वीर शिवाजी' और 'एकलिंग का दीवान' इन उपन्यासों में आम जनता के सुख-दु:ख को केंद्र में रखकर राज चलाने वाले व आदर्श राजा माने जाने वाले वीर राजाओं के जीवन चरित्र को सजीव बनाया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों का आधार व्यापक सामाजिक व राष्ट्रीय हित रहा है। उनके प्रागैतिहासिक उपन्यासों को इसी की अगली कड़ी माना जा सकता है। 'अभिशप्त कथा' के माध्यम से आधुनिक व्यक्ति की स्वार्थपरता व मूल्यहीन राजनीति को मिथकीय रूप में प्रस्तुत किया है। प्रागैतिहासिक कृष्ण को औपन्यासिक व मिथकीय रूप देकर आधुनिक मनुष्य की सभी भौतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक समस्याओं के शाश्वत समाधान के रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्ण का जीवन मानवीय समस्याओं पर बेहतर उपाय बताता है। आधुनिक मनुष्य की सभी मानवीय समस्याएँ स्वयं मनुष्य की अपनी ही वृत्तियों द्वारा निर्मित हैं। लोभ, मोह, द्वेष, ईर्ष्या, महत्वाकांक्षा व प्रतिशोध इन्हीं मुख्य समस्याओं से घिरे या उन वृत्तियों से उत्पन्न अन्य समस्याओं का समाधान लेखक मनु शर्मा औपन्यासिक मिथकीय कृष्ण के चरित्र के माध्यम से करते हैं। मनु शर्मा द्वारा निर्मित अन्य प्रागैतिहासिक उपन्यास 'कर्ण की आत्मकथा', 'द्रोण की आत्मकथा', 'द्रौपदी की आत्मकथा' व 'गांधारी की आत्मकथा' मानवी वृत्तियों से निर्मित समस्याओं के रूप में है। ये सारे औपन्यासिक पात्र आधुनिक मनुष्य के मिथक के रूप में उभरे हैं, जो अपनी समस्याओं का स्वयं निर्माता है। औपन्यासिक कर्ण आधुनिक मनुष्य के अहं व प्रतिशोध भावना का मिथक है। औपन्यासिक द्रोण आधुनिक पथभ्रष्ट अध्यापक के रूप में तथा प्रतिशोध पीड़ित व्यक्ति का मिथक है, जो स्वयं को सुख-सुविधा के लिए अपने को शासक तथा पूँजीवादी व्यवस्था के हाथों बेच देता है। औपन्यासिक गांधारी आधुनिक परंतु परंपरावादी विचारधारा से प्रेरित

तथा इन्हीं विचारों से पीड़ित एक ईर्ष्यावादी स्त्री के मिथक रूप में दिखाई देती है। औपन्यासिक द्रौपदी नितांत आधुनिक स्त्री का मिथक है। उसका आचरण स्वयंभू है। उसमें उच्च कोटि का स्वाभिमान दिखाई देता है। वह अपनी प्रतिभा से पांडवों को एकसंघ बनाए रखती है, फिर भी उसमें भी प्रतिशोध की भावना है। इसलिए उपन्यासों में वह अपने स्वाभिमान को तो बरकरार रखती है लेकिन सुख और शांति जो मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य है वह उसके जीवन में भी दिखाई नहीं देता। औपन्यासिक मिथकीय कृष्ण इन सभी भावों को अपने में संजोए रखते हैं लेकिन कहीं भी वह अति की सीमा तक नहीं पहुँचते हैं। मानवीय प्रवृत्तियों की संतुलितता ही मनुष्य जीवन को शांति व आनंद प्रदान करते हैं। लेखक ने अपने उपन्यासों में मानवी जीवन की शाश्वत समस्याओं के शाश्वत समाधान हेतु ही इन प्रागैतिहासिक पात्रों व घटनाओं को मिथकीय रूप दिया है। महाभारत पर आधारित उपन्यासों में कथानक की अपूर्णता दिखाई देती है। यह अपूर्णता आत्मकथा शैली का परिणाम है। लेखक के सामाजिक उपन्यास, 'घरौंदा', 'समय साक्षी है' तथा 'विभाजित सवेरा' भारत के आधुनिक इतिहास का ही सामाजिक रूप है। लेकिन इन इतिहास व प्रागैतिहासिक उपन्यासों में लेखकीय उद्देश्य की महानता ही दिखाई देती है।

डॉ. सचिन मदन जाधव

सहयोगी आचार्य, हिंदी विभाग,
सदगुरु गाडगे महाराज कॉलेज, कराड महाराष्ट्र

शैक्षिक योग्यता:

एम.ए., बी.एड., पीएच.डी.
शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर से
मानव्य विद्या शाखा के अंतर्गत हिंदी
विषय में विद्यावाचस्पति की उपाधि

अध्यापन अनुभव :

19 वर्ष
सहयोगी आचार्य, हिंदी विभाग,
सदगुरु गाडगे महाराज कॉलेज, कराड महाराष्ट्र

अनुसन्धान कार्य:

'मनु शर्मा के उपन्यासों में मिथकीय चेतना' इस शीर्षक से
विद्यावाचस्पति उपाधि के लिए शोध कार्य संपन्न

यूजीसी की सहायता से

1.'ग्रामीण पत्रकारिता: एक अध्ययन'
2. प्रदीप सौरभ के उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ
इस शीर्षक से लघु शोध प्रकल्प संपन्न
राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 20 से अधिक
शोध आलेख प्रकाशित

- 'सदगुरु' नियतकालिक के लिए विभागीय संपादक
- के रूप में कार्यरत
- 'शॉर्ट टर्म कोर्सेस' के समन्वयक के रूप में कार्यरत
- 'नेट सेट मार्गदर्शन वर्ग' के उप समन्वयक के रूप में कार्यरत

ISBN - 978-81-988504-2-3

9 788198 850423

PRARUP PUBLICATIONS, KOLHAPUR